दैत्यवंश

(महाकाव्य)

लेखक

श्री हरदयालुसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

संवत् १९९७

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य २॥)

प्रस्तावना

आज से लगभग ३५ वर्ष पहले जब मैंने अपने गुरु पंडित नन्दकुमार जी त्रिपाठी से 'रघुवंश' का अध्ययन किया था तब मेरे हृदय में यह प्रश्न उठा था कि क्या रघुवंश जैसा कोई "दैत्यवंश" काव्य भी है। एक दिन गुरु जी से उस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उत्तर मिला कि ऐसे दुष्ट काव्यों के नायक नहीं हो सकते इसी से शायद ऐसा काव्य नहीं लिखा गया है। गुरुवर के इस उत्तर से मेरे मन में यह भाव तत्काल उदय हो आया कि ऐसा काव्य अवश्य लिखा जाना चाहिए, परन्तु उस समय इस ओर अपने को इसलिए भी प्रवृत्त न कर सका कि गुरुवर के निषेध का डर था।

कालान्तर में जब मैंने वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया और हरिवंश पुराण सुनकर राक्षसों, असुरों और दैत्यों के चरित्रों का विवेचनात्मक विश्लेषण किया तब मेरे हृदय में उस पहले की धारणा ने और भी ज़ोर मारा, क्योंकि इस अध्ययन से मुझे विश्वास हो गया कि दैत्यों और राक्षसों के चरित्रों से भी काव्योचित सामग्री भले प्रकार संकलित की जा सकती है। इसके बहुत दिनों के बाद श्री माइकेल मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद-वध' देखने में आया। उसे पढ़कर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि पुराण के इन उपेक्षित पात्रों को लेकर बहुत सुन्दर चीज़ लिखी जा सकती है। इधर जब 'साकेत' में उर्मिला के दर्शन हुए, उससे मुझे 'दैत्यवंश' के लिखने की और भी प्रेरणा मिली।

इस समय तक मैं कुछ टूटी-फूटी काव्य-रचना कर लेने लगा था। 'नागानंद' और 'वेणीसंहार' के अनुवाद भी कर चुका था और 'रीतिरत्न' एवं 'रीतिरत्नाकर' जैसे ग्रन्थ भी लिख चुका था। इनमें से जब 'नागानन्द' देहली-बोर्ड के द्वारा और 'रीतिरत्न' राजपूताना-बोर्ड से द्वारा पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हो गया, और आगरा-यूनीवर्सिटी ने मेरी 'सूर-मुक्तावली' के संक्षिप्त संस्करण को बी० ए० में पाठ्य-पुस्तक के रूप से स्वीकार कर लिया तब मित्रों ने मेरी पीठ ठोंकी और स्वतन्त्र काव्यग्रन्थ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इनमें आगरा-निवासी श्री चतुर्वेदी अयोध्याप्रसाद जी पाठक बी० ए०,

एल-एल० बी० एडवोकेट और पं० हृषीकेश जी के नाम विशेष रूप से उल्लेख-नीय हैं। इन्हीं महानुभावों की प्रेरणा से मैंने 'दैत्यवंश' लिखना आरम्भ कर दिया।

सौभाग्यवश इसी वर्ष मुझे इंडियन प्रेस के अध्यक्ष श्रीयुत बाबू हरिकेशव घोष महोदय का आश्रय मिला, और उन्हीं के पाणिपल्लव की छाया में रह-कर प्रयाग में मैंने इसे समाप्त किया। इसकी प्रस्तावना 'सरस्वती' के सम्पादक पंडित उमेशचन्द्र मिश्र विद्यावाचस्पति ने लिखने का कष्ट उठाया है, अतः इस अनुकम्पा के लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक कैसी है, इस सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। अपनी रचना पर सबकी ममता होती है और इस पर मुझे भी है। परन्तु यदि साहित्य-मर्मज्ञों ने इसे पसन्द किया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

प्रयाग
होलिका, सं० १९९६

विनयावनत
श्री हरदयालुसिंह

भूमिका

अभी कुछ ही दिनों की बात है, काव्य-भाषा के प्रश्न पर हिन्दी-साहित्यिक दो दलों में बँटे हुए थे। किन्तु इन कुछ ही दिनों में आधुनिक हिन्दी की वास्तविक काव्य-भाषा ने भाव-व्यंजना की प्रौढ़ता, शैली की वक्रता, शाब्दिक चमत्कारव्यापक अनुभूतियों के व्यक्तीकरण का सामर्थ्य आदि सभी दृष्टियों से इतनी उन्नति कर ली है कि साहित्य का आधुनिक विद्यार्थी आज यह अनुमान भी नहीं कर सकता कि इस 'खड़ी बोली' कही जानेवाली साहित्यिक-हिन्दी की 'ब्रजभाषा' के साथ भी कभी प्रतिद्वन्द्विता रही होगी। आज 'खड़ी बोली' को 'ब्रजभाषा' की ओर से किसी प्रकार का खतरा नहीं रहा है। किन्तु जिस भाषा के माध्यम से हिन्दी-प्रदेश के करोड़ों नर-नारियों ने दस-बीस नहीं, लगभग चार सौ साल तक अपनी अनुभूतियों, कल्पनाओं, भावनाओं और विचारों को व्यक्त किया है, जो आज भी हिन्दी-प्रदेश के एक विशिष्ट भू-भाग की जीवित बोली है, एवं जिसके प्रकृत-माधुर्य की प्रशंसा आज भी देश-विदेश में फैली हुई है, उसे एक बारगी काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रजभाषा ने काव्य का क्षेत्र खड़ी बोली के लिए एकदम खाली कर दिया है, उसने अपने सब अस्त्र डाल दिये हैं; किन्तु हम सूर, तुलसी, बिहारी, मतिराम, घनानंद, पद्माकर आदि अमर कवियों की काव्य-वाणी को जीवित रहने के अधिकार से वंचित नहीं कर सकते। कदाचित् खड़ी बोली के कट्टर से कट्टर हिमायती की यह इच्छा न होगी। इसी लिए अपने गुप्त, प्रसाद, पंत, महादेवी आदि नवीन कवियों की नवीनता से हम इतने नहीं चौंधिया जाते कि सत्यनारायण, रत्नाकर और वियोगी हरि की ओर दृष्टिपात भी न कर सकें। वास्तव में हिंदी के गंभीर साहित्यिकों ने इन प्राचीन परिपाटी के कवियों का कम सम्मान नहीं किया है। सच तो यह है कि ये महानुभाव हमारे अधिक आदर के पात्र हैं, क्योंकि एक तो वे हमारे प्रिय प्राचीन संस्मरणों में नई जान फूंकने का प्रयत्न करते रहते हैं; दूसरे उन्हें अपने कवित्व पर इतना भरोसा है कि भाषा का बंधन उन्हें ज़रा भी नहीं अखरता।

भाषा पर विवाद करने के दिन अब नहीं रहे। काव्य किसी भी भाषा में हो, यदि उसमें काव्य के आवश्यक गुण हैं तो अवश्य अभिनन्दनीय

होगा। इसलिए आधुनिक काल में निकलनेवाले ब्रजभाषा के काव्य को हम प्राचीनता के प्रति केवल कुतूहल-मात्र से नहीं देख सकते। हमें उनके द्वारा व्यक्त होनेवाली मानव-भावनाओं की भी परख करनी पड़ेगी, अर्थात् भाषा के विचार को एक ओर रखकर हम उन्हें भी कवित्व की कसौटी पर ही कसेंगे।

दैत्यवंश महाकाव्य—में पुरानी भाषा में, पुराने छन्दों में, पुरानी काव्य-परिपाटी पर एक पुराने कथानक को काव्य का रूप दिया गया है। सब कुछ पुराना होते हुए भी यदि उसमें वास्तविक कवित्व है, तो उसमें कुछ भी पुराना नहीं, वह चिर-नवीन है, प्राचीन वस्त्राभरण से ढँका हुआ वह रूप-सौन्दर्य है जो सब कालों में, सब देशों में, एक समान मानव-आत्मा को आन्दोलित करता रहा है, और करता रहेगा।

आजकल हम अपनी पौराणिक कथाओं से इतने अनभिज्ञ हो गये हैं कि प्राचीन देवी-देवताओं के नाम तक सुनकर हमें विस्मय और कुतूहल होता है, मानो हमारा जातीय जीवन इन्हीं पिछले सौ-पचास साल का है और उसकी समस्त प्रेरणायें किसी दूर देश से लाकर इस अपरिचित भू-भाग में क़ैद कर दी गई हैं। ऐसे ज़माने में हम देव-वंश की कथा को भी काव्यरूप में ढालकर अपने नवीन शिक्षित समुदाय से केवल उपेक्षाजन्य हलकी मुस-कराहट की ही आशा कर सकते हैं। और वह मुसकराहट 'दैत्यवंश' का तो नाम ही सुनकर कदाचित् अट्टहास में बदल जायगी। परन्तु यदि हमें प्राचीनता के नाम से ही मुंह बिचकाने की उतावली न हो, और तनिक धीरज धरकर हम सोचने का कष्ट करें तो मालूम होगा कि हमारे प्राचीन साहित्य में तथा धार्मिक कहे जानेवाले पौराणिक ग्रन्थों में मानव की भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों का कैसा अक्षय्य कोष भरा हुआ है। हम कितने सम्पन्न हैं, यह बात आँख रहते हुए भी हम नहीं देख पाते। इससे अधिक दुःख की बात और क्या होगी ?

साधारणतया लोग देवों में सद्गुणों और दैत्यों में असद्गुणों की भावना करते हैं, किन्तु पौराणिक आख्यानों के पढ़ने-सुननेवाले जानते हैं कि देवों में निरे दिव्यगुण ही नहीं हैं। छल-प्रपंच, स्वार्थपरता, विश्वासघात, माया, असत्य आदि मानवीय कमज़ोरियाँ उनमें भी विद्यमान हैं और अपने प्रतिद्वन्द्वी दैत्यों से कुछ अधिक मात्रा में ही। फिर भी परम्परा से देवों को जितनी सहानुभूति प्राप्त हुई है उसका शतांश भी दैत्यों को नहीं मिला—अमृत का सारा घट देवों ने ही साफ़ कर दिया, बेचारे राहु ने चोरी से अपनी अंजलि बढ़ाई तो उसके दो टुकड़े कर दिये गये! हम देवताओं के गुण

गाने में अपनी सारी कुशलता समाप्त कर देते हैं और यह भूल जाते हैं कि यह अमर-वृन्द चोरी के अमृत से अमर बन सका है। मानवों का देवताओं के प्रति यह अनुचित पक्षपात देखकर कदाचित् 'दैत्यवंश' के कवि का हृदय भर आया और उसने दैत्यों को मानवीय सहानुभूति का क्वचिदंश प्राप्त कराने के उपकरण जुटाने का निश्चय कर लिया। 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के पाठक देखेंगे कि देवताओं में दैत्यों की अपेक्षा कमज़ोरियाँ अधिक मिलती हैं; साथ ही दैत्यों में निरे अदिव्य गुणों का ही समावेश हो, ऐसी बात नहीं है। उच्च आदर्श उनमें भी उसी प्रकार पाये जाते हैं, जिस प्रकार देवताओं में। केवल इस अपराध में कि देवताओं का उनसे वैर है, हमें उसके विरुद्ध फ़ैसला नहीं दे देना चाहिए।

किन्तु देवपक्ष के प्रति लोकमत की कवि ने अवहेलना नहीं की है; बल्कि कहीं कहीं तो वह भूल-सा गया है कि उसके चरित-नायक देवता नहीं, दैत्य हैं। यहाँ हम पाठकों का ध्यान इन्द्र के मानसरोवर में छिपने तथा हंसदूत भेजने के प्रसंग तथा वामन-जन्म की कथा की ओर अकर्षित करते हैं। लोकमत की अवहेलना करने का साहस या दुस्साहस बँगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त में था, जिन्होंने राम के विरोधी—लोकमत के विरोधी—राक्षसों को अपनी सहानुभूति देने में तनिक भी संकोच नहीं किया था। भले ही वे अमरकथा को उलट देने में—उलटी गंगा बहाने में—सफल न हुए हों, फिर भी उनका 'मेघनाद-वध' भारतीय काव्य-साहित्य का एक अमर ग्रन्थ है। 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के कवि ने उलटी गंगा बहाने का प्रयत्न भी नहीं किया। उसने तो श्रीमद्भागवत से अपनी कथा-वस्तु चुनकर तथा उसमें अपनी आवश्यकताओं के अनुसार जहाँ-तहाँ हेर-फेर करके उसे काव्य का रूप दे दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने जहाँ कहीं राक्षसों का वर्णन किया है, वहाँ उनके हृदय में पैठकर उनकी सूक्ष्म भावनाओं को जानने की उन्हें आवश्यकता तक नहीं जान पड़ी। कदाचित् उन्हें इसमें अपनी प्रतिभा के अपव्यय की संभावना थी, परन्तु 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के कवि को इस चिर-तिरस्कृत वंश के चरित-वर्णन करते समय भी काफ़ी संकोच है और इस गुरुतर कार्य को करते हुए अपनी क्षमता में भी उसे संदेह होने लगता है। इसी लिए वह दैत्यों के वर्णन की सामर्थ्य-भिक्षा माँगने के लिए देवताओं के पास पहुँचा है। 'सरस्वती' से प्रार्थना करता हुआ वह कहता है—

दैत्यबंस संभव नरेसनि चरित चारु—
पारावार पार तौ करत बनिहै नहीं।

× × ×

या ते रसना पै आनि बैठौ पदमासनि जू
पाय अवलम्ब दास स्रम गनिहै नहीं ।।

वह देवताओं का भक्त है, इसमें शक नहीं; और देवताओं के ही नाते वह उनके बंधुओं के चरित्रांकन में हर्ष और उत्साह मानता है—

याही काज देवनि के बंधु दैत्यबंसिन कौ,
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गायहौं ।

'दैत्यवंश-महाकाव्य' का चरित-नायक कोई एक व्यक्ति नहीं, बरन समस्त दैत्यवंश—राजा हिरण्याक्ष से लेकर स्कंद तक है। पीछे हमने इसके पुरानेपन का ज़िक्र किया था, परन्तु एक संपूर्ण वंश को महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करने का हिन्दी में यह नवीन प्रयास है। निस्संदेह इस प्रकार के काव्य की प्रेरणा कवि को महाकवि कालिदास के रघुवंश से प्राप्त हुई है।

यहाँ हम 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के कथानक को दुहराकर पाठकों के साथ अन्याय नहीं करेंगे, क्योंकि जिस बात के लिए कवि ने इतना श्रम उठाया है, अपनी काव्य-प्रतिभा का व्यय किया है, उसे गद्यमयी भाषा में, संक्षेप में, कह देना अनुचित होगा। इस ग्रंथ के नामकरण के साथ ही 'महाकाव्य' का शब्द जोड़ दिया गया है, मानो कवि ने आलोचकों पर विश्वास न करके स्वयं उनका काम कर देने की ठानी हो। इसलिए पाठकों के मन में सबसे पहले इस ग्रंथ के महाकाव्यत्व के विषय में प्रश्न उठेगा। हम भी इसी प्रश्न से आरम्भ करते हैं।

महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण लिखकर महाकाव्य के रूप से संसार को पहली बार परिचित कराया था। इसके उपरान्त महाकाव्यों की परिपाटी चल पड़ी और जिसने अपने को 'महाकवि' समझा उसी ने एक महाकाव्य लिख डाला। महाभारत संभवतः संसार का सबसे बड़ा महाकाव्य है। रघुवंश, माघ, किरात, नैषध आदि ही सर्वमान्य महाकाव्य हैं। यह परंपरा शताब्दियों तक चलती रही और आज भी किसी न किसी रूप में चल रही है। संस्कृत से यह प्रवृत्ति हिन्दी में भी आई और फलतः पद्मावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका आदि का निर्माण हुआ। बीसवीं सदी में लोगों का विश्वास था कि यह गद्य का युग है, फलतः इसमें काव्य के विस्तार के लिए यथेष्ट अवकाश नहीं है। फिर भी इसमें महाकाव्य निकले और कई निकले।

उदाहरणार्थ रामचरित-चिन्तामणि, प्रियप्रवास, साकेत, सिद्धार्थ, हल्दी-घाटी, 'पुरुषोत्तम' आदि तथाकथित महाकाव्यों के नाम गिनाये जा सकते हैं। हिन्दी में ऐसी शीघ्रता से एक के बाद एक महाकाव्य का प्रकाशित होना यह सिद्ध करता है कि 'महाकाव्य' लिखने और 'महाकवि' कहलाने के प्रति हिन्दी के कवियों के हृदयों में पुराने कवियों की अपेक्षा अधिक मोह है।

'महाकाव्य' की परिभाषा प्राचीन काव्यशास्त्र ने इन शब्दों में दी है—

"महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। उसका नायक कोई देवता या सद्वंशोद्भव क्षत्रिय जो धीरोदात्त गुणान्वित हो, होना चाहिए। एक ही वंश में जन्म लेनेवाले अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर और शान्त इसके अंगीरस हों, अर्थात् महाकाव्य में इन तीनों में से किसी एक की प्रधानता रहे। शेष रसों की भी समुचित अवतारणा रहे। नाटक की सभी संधियाँ इसमें हों। इसका कथानक इतिहास-सम्मत या परंपरा प्रसिद्ध हो। उसमें चार वर्ग हों, और एक फल हो।

"आदि में नमः क्रिया अथवा वस्तु निर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मंगलाचरण हो। कहीं-कहीं पर दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा भी हो। एक सर्ग में एक ही प्रधान छन्द हो, जो उसके अन्त में बदल दिया जाय। सर्ग न बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे, और उनकी संख्या ८ से अधिक हो। यदि एक ही सर्ग में कई प्रकार के वृत्त या छन्दों का प्रयोग किया जाय तो भी कोई हानि नहीं। सर्गान्त में आगामी सर्ग की कथा की सूचना हो। यथायोग्य सांगोपांगों के सहित उसमें संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, ध्वान्त, दिवस, प्रात, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, समुद्र, संभोग, विप्रयोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, रणयात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्रोत्पत्ति आदि का वर्णन हो। उसका नाम कवि के नाम, कथावस्तु, नायक के नाम आदि के आधार पर हो और सर्गों का नाम कथा के आधार पर हो।"

इस महाकाव्य में दैत्यवंश के 'भूपाल' नायक हैं, जो सभी धीरोदात्त गुण-वाले हैं। प्रथम सर्ग के ४ से लेकर १० छन्दों तक इन भूपालों का जो गुणा-नुवाद किया गया है तथा बलि की शालीनता, दानशीलता व पराक्रम का जैसा उल्लेख हुआ है उससे इनके धीरोदात्त होने में सन्देह नहीं रह जाता। इसमें कुल १८ सर्ग हैं। सर्ग में एक ही प्रकार के छंद की प्रधानता है। सर्गान्त में छन्द भी बदल दिये गये हैं और उनमें आगामी सर्ग की कथा का संकेत भी विद्यमान है। शृङ्गार और वीररस इसमें प्रधान हैं। शेष रसों की भी यत्र-तत्र अवतारणा हुई है। कथानक पुराण-विश्रुत है। कवि-कल्पना-

द्वारा उसमें अवश्यक संकोच या प्रसार भी किया गया है। महाकाव्य के उपयुक्त लक्षणों में गिनाई वस्तुओं—संध्या, मृगया आदि का भी इसमें वर्णन आया है।

यदि इसी कसौटी पर खरा उतरने से कोई कृति महाकाव्य कही जा सकती है, तो यह कृति भी निस्सन्देह महाकाव्य है। परन्तु 'प्रतिभा' इस पर विश्वास करना नहीं चाहती। उसकी सम्मति में उक्त लक्षणों को रखते हुए भी कोई कृति तब तक महाकाव्य कहलाने का अधिकार नहीं रखती जब तक उसमें 'महाकाव्यत्व' न हो। यह 'महाकाव्यत्व' क्या है, इसका निर्धारण सहृदय पाठकों का हृदय करता है, लक्षण-ग्रन्थ नहीं। इसी लिए इसका अन्तिम निर्णय हम सहृदय पाठकों पर छोड़ते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'दैत्यवंश-महाकाव्य' का नायक संपूर्ण दैत्य-वंश है। आदि पुरुष ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के १३ पत्नियाँ थीं। उनमें से एक का नाम 'दिति' था। इसी 'दिति' की संतान 'दैत्य' या दैतेय कहलाये। कश्यप की दूसरी पत्नी 'अदिति' के पुत्र देवगण हुए। देवों में सात्विक गुण प्रधान थे और दैत्यों में तामसिक। अतः जन्म से ही देवों और दैत्यों में प्रतिद्वंद्विता आरम्भ हो गई। दैत्यवंश में सभी व्यक्ति एक से एक बढ़कर पराक्रमी हुए। प्रस्तुत काव्य में दैत्यवंश के हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कंद—इन छः राजाओं के वर्णन हैं। कथा के अधिकांश में देवों और दैत्यों के पारस्परिक संघर्ष का वर्णन है, और काव्य से सबसे अधिक रोचक स्थल भी इसी संघर्ष के परिणाम हैं। इस प्रकार देववंश इस काव्य का प्रतिनायक है। प्रतिनायक धूर्त, प्रपंची आदि होना चाहिए। पाठक देखेंगे कि उनके पूज्य देवताओं में धूर्त्तता, वंचना आदि गुणों की कमी नहीं है। वास्तव में दैत्य और देव में मूलतः अधिक अन्तर नहीं है।

मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप 'देव' है। फलतः दैत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है, जिसमें शारीरिक बल प्रचुर मात्रा में मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मास्तिष्क-बल अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्रायः एक-से अनुपात में किसी वर्ग में नहीं पाई जातीं। विकास-क्रम में यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग में जैसे-जैसे मास्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल-प्रपंच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढ़े-चढ़े हैं तो उनमें सरल-विश्वास, सत्य-निष्ठा और सिधाई

विद्यमान है। देवगण शरीर में निर्बल हैं, पर चतुर अधिक हैं; वे बात-बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं। शेक्सपियर ने भी अपने 'टेम्पेस्ट' में प्रौस्पेरो और कैलिबन के सम्बन्ध में मस्तिष्क के उच्च विकास और ठेठ चेतन प्रकृति का लगभग ऐसा ही संघर्ष दिखाया है। अन्तर केवल इतना है कि शेक्सपियर का चित्रपट अत्यन्त संकुचित है, जब कि पुराणों में इस संघर्ष को अधिक आलंकारिक रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

देव और दैत्य अर्थात् मास्तिष्कीय और शारीरी प्रवृत्तियों के संघर्ष में मनुष्य की सहानुभूति देवों के प्रति होना स्वाभाविक है, क्योंकि वह भी मस्तिष्क के बल से ही शेष सृष्टि पर शासन करता है और अपने लाभ के लिए सृष्टि के इतर प्राणियों पर किये गये अपने अत्याचारों को अत्याचार नहीं गिनता। परन्तु यदि इन इतर प्राणियों की भावनाओं का––यदि उनमें हों––विश्लेषण किया जाय तो हम देखेंगे कि वे भी हमारे अत्याचारों से अत्यन्त पीड़ित और दुखी रहते हैं। कदाचित् उन्हें हमारे व्यवहार अधिक कलुषित और अन्यायपूर्ण लगते होंगे, क्योंकि हम उनके ऊपर निरन्तर विजय करते जा रहे हैं। 'दैत्यवंश-महाकाव्य' में भी देवताओं के अत्याचारों और उनसे पीड़ित होनेवाले दैत्यों की किंचित् मनोभावनाओं का वर्णन मिलेगा। यद्यपि हमारा कवि देवताओं के प्रति अपनी सहज सहानुभूति को नहीं छोड़ सका है, फिर भी उसने अपने दृष्टि-कोण को अधिक-से-अधिक निरपेक्ष (detached) रखने की कोशिश की है, और यही उसकी सफलता है।

हिरण्याक्ष के विरुद्ध जब देवताओं की कुछ न चली तब उन्हें विष्णु की शरण जाना पड़ा। विष्णु ने शूकर का अवतार धरकर हिरण्याक्ष को मार डाला। इस कथा में हमारे कवि ने भागवत की कथा से थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है। यह दैत्यवंश की महत्ता के अनुकूल ही हुआ है कि शूकर ने महाराज हिरण्याक्ष की वाटिका में जाकर उसे उजाड़ा और इस प्रकार हिरण्याक्ष का कोप जाग्रत करके अपना पीछा कराया। यह वर्णन भी काफ़ी रोचक हुआ है।

हिरण्यकशिपु का बध भी स्वयं भगवान् को करना पड़ा और उसमें भी वरदान के सिलसिले में उन्हें छल-प्रपंच करना पड़ा। प्रहलाद दैत्यवंश की परम्परा को भंग करनेवाला और शत्रु के पक्ष का समर्थक था, अतः उसे राज्य न मिलकर उसके पुत्र विरोचन को मिला। विरोचन भी देवताओं की चाल में आगया और बृहस्पति के कहने पर देवताओं के साथ मिलकर वैकुण्ठ पर

चढ़ाई करने को प्रस्तुत हो गया। परन्तु शुक्राचार्य ने यहाँ दैत्यों को सतर्क कर दिया और विरोचन को गद्दी से उतरवाकर बलि को राजा बनवाया, क्योंकि बलि विरोचन की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् था, उसके देवताओं की चाल में फँसने की कम संभावना थी।

महाराज बलि 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के सबसे प्रधान—मध्यनायक हैं; उसी तरह जैसे रघुवंश के रामचन्द्र। परन्तु वे भी देवताओं की चालों से नहीं बच पाते। देवतागण उन्हीं का नाश उपस्थित कराने के लिए समुद्रमंथन कराते हैं। फिर वासुकी की पूँछ स्वयं पकड़ते हैं और फन दैत्यों से पकड़ाते हैं, जिससे क्षुब्ध वासुकी के मुख से निकलते हुए गरल से भी दैत्यों को पीड़ित होना पड़ता है। बँटवारे में भी काफ़ी चालाकी से काम लिया जाता है। स्वार्थपरता तो मानो देवों के बाँट पड़ी है। वे स्वयं लेना चाहते हैं लक्ष्मी, रंभा, गज, रत्न और अमृत और आधे के साझीदार दैत्यों को देना चाहते हैं वारुणी और विष! यदि भाग्यवश दैत्य इस चालाकी को ताड़ जाते हैं और अमृतघट को ले जाकर अपने घर में रख लेते हैं तो देव रात को उसे वहाँ से चुरवा लेते हैं। बँटवारे में अमृत का घट स्वयं खत्म कर देते हैं और बेचारे दैत्यों को वारुणी परोसी जाती है। राहु यह कौशल समझकर अमृत पीने के लालच से देवों में जा बैठता है तब उसके दो खंड कर दिये जाते हैं।

समुद्र-मंथन के प्रसंग में लक्ष्मी के स्वयंवर की कथा कवि ने बड़े कौशल से वर्णन की है। यह तो विदित ही है कि लक्ष्मी ने दैत्यों की ओर कोई रुख नहीं किया, परन्तु इसके कारण बलि को आत्मग्लानि हुई हो, ऐसी बात नहीं है। स्वयं बलि ने भी लक्ष्मी के प्रति उदासीनता ही दिखाई है। बलि की संयमशीलता पर सरस्वती तक को आश्चर्य हुआ है—

सिन्धुजा के मन आई नहीं,
  बलि हू तेहि ओर न नेकु निहारो।
सो गुनि भारती ने हिय माहिं,
  अचंभित ह्वै कछू आप बिचारो।

लक्ष्मी के स्वयंवर की कथा श्रीमद्भागवत में भी है, परन्तु उसमें लक्ष्मी अकेली ही देवताओं की मंडली में घूमती हुई एक एक करके उनमें दोष दिखाती जाती है। यहाँ कवि ने सरस्वती को उसके साथ कर दिया है। सरस्वती लक्ष्मी को सब देवताओं का परिचय देती जाती है। इन परिचयों में

कवि ने बड़े विदग्ध वर्णन किये हैं। वासुकी का परिचय देती हुई सरस्वती कहती है––

सम्भु के सीस सौं बाल मयंक,
पियूष कौ एक ही जीभ निकारी।
दूसरी त्यौं रसना कौ बढ़ाय,
गहै अधरा कौ सुधा जहँ धारी।
एक ही साथ दुहून कौ चाखि कै,
कामै धरचौ विधि स्वाद सँभारी।
सो झगरो निपटाइबै कौ,
बस वासुकी एकै भयौ अधिकारी।

इंद्र की सिफ़ारिश करती हुई वह मधुर व्यंग्य के साथ कहती है––

ठानियो रारि पुलोमजा सौं जनि,
औ अदिती कौ सँतोषहि दीजियो।
पाय सुरेस सौं नायकै आपु,
सबै सुख जीवन के उत कीजियो।

इसी प्रकार शिव जी के परिचय में अच्छा ख़ासा मज़ाक़ किया गया है। शिव जी के जीवन में विरोधाभास-द्वारा प्रतिष्ठित व्यंग्य देखने योग्य है––

जाचकै देत हैं विश्व बिभौ,
अपने तन पै गज खाल सँवारत।
जोगिन मैं सब सों हैं बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग में धारत।
लीन्हें त्रिसूल रहैं कर मैं,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत।
जारि ही देत सबै जग कौ,
जब तीनो विलोचन खोलि निहारत।

शिव के वर्णन से उत्पन्न पाठक के होठों का ईषत् हास ब्रह्मा का परिचय सुनकर खुल पड़ता है––

"तीनहू लोक के ये करता,
अरु चारहू बेद बनावनवारे।
दाढ़ी भई सन-सी सिगरी,
सिर पै कहूँ केस न दीसत कारे।

नारद सौं इनके हैं सपूत,
तिहूँपुर ज्ञान सिखावनहारे।
प्रेम की पास मैं बाँधन कौ,
तुम्हैं बूढे बबा इत हैं पगु धारे॥

× ×

मेलिकै कंठ मधूक की माल,
इन्हैं तुम आजु कृतारथ कीजियो।
औसर मंगल गावन काज,
हमैं निज बृद्ध बिबाह मैं दीजियो।
त्योंही बिनोद बिहारनिकौ,
इन सौं मिलिकै सिगरो रस लीजियो।
पै गृह-जीवन के सुख की,
तपसी घर में रहि साध न कीजियो॥

इसके बाद लक्ष्मी विष्णु के निकट पहुँचती है। कवि ने उसके सात्विक भावों की ओर संकेत किया है—

ठाढ़ी जकी-सी छिनैक रही,
कर्त्तव्यहु कौ न सकी निरधारी।

विष्णु के प्रति लक्ष्मी का अनुराग सरस्वती को विदित है। इसी लिए जब लक्ष्मी विष्णु के सामने पहुँचती है तब सरस्वती को चुटकी लेने का अच्छा अवसर मिल जाता है। वह कहती है—

"आगे चलौ सखि देखें बरैं परिचय इनको हम कैसे करावैं।
मो अबला की कहा गति है सहसानन हू कहि पार न पावैं॥"

सारा मज़ा "आगे चलौ सखि देखैं बरैं" में छिपा हुआ है।

लक्ष्मी का विष्णु के प्रति यह अनुराग देखकर दैत्यों के हृदय जलने लगे और उन्होंने कमला की मति को भ्रमाने के लिए विष्णु के रूप धारण कर लिये। लक्ष्मी अनेक विष्णुओं को देखकर बड़ी चकराई। शिव को भी इस मज़ाक़ में खूब मज़ा आया। कवि का यह वर्णन बहुत सुन्दर है—

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक,
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन।
त्यौं भ्रम मैं परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहिं माल सकोचन।

यहाँ पर भी कवि ने बलि की महत्ता की ओर संकेत किया है—

वाकी लखे दयनीय दसाहिं,
लगे अपने मन मैं बलि सोचन।
जानि रहस्य सँकेतहिं सौं,
नृप आपु निवारि दियो तिन पोचन॥

रस की दृष्टि से लक्ष्मी का स्वयंवर शृंगार के ही अन्तर्गत माना जायगा। ये समस्त हास-परिहास के भाव उसी के संचारी हैं। परन्तु कवि ने उस स्थायी भाव को बहुत संक्षेप में—केवल किंचित् सात्विक भावों को दिखाते हुए वर्णन कर दिया है—

देखि अचानक और की और,
सँकोचि मधूक की माल सँवारी।
त्यौं दुऔ कम्पित हाथ उठाय,
दियौ पुरुषोत्तम के गर डारी।
लाजन बोलि सकी न कछू,
कृस देह भई पै रोमंचित सारी।
औ सखियानि कै संग समोद,
बिनोद-भरी निज गेह सिधारी॥

इसी सर्ग में देवताओं के अमृत चुराने के षड्यन्त्र का भी उल्लेख है। शिव जी के स्त्री-रूप के वर्णन में कवि ने प्राचीन उपमा-उत्प्रेक्षाओं का बहुत अच्छा उपयोग किया है।

देवताओं की चालों से परेशान होकर दैत्यों के पास केवल एक चारा रह जाता है—अपनी शारीरिक शक्ति से देवताओं को छकाने का। इस युद्ध में दैत्य विजयी होते हैं, परन्तु किसी छल-बल से नहीं, शुद्ध शारीरिक शक्ति के द्वारा। यहाँ पर दैत्य सेनापति बाण की उदात्त एवं दिव्य भावना की देवताओं के सेनापति कार्त्तिकेय की कठोर कर्त्तव्य की दुहाई दर्शनीय है।

बाण कहता है—

अनरीति इमि तुम करत कत बिसराय पूरब नेह कौं।
मैलो कियौं गौरी बसन निज धूरि धूसर देह सौं।
तुम संग ही पय पान कीन्ह्यो बैठि गिरिजा-गोद मैं।
सीखे चलावन बान हम तुम सम्भु ही सौं मोद मैं।

यहि लागि तुम सों कहत नातो बन्धु को निरबाहिये।
करुना-यतन कौ सुवन-हिय येतो कठोर न चाहिये।
गुरु-भ्रात ही के गात पै कैसे प्रहारौं सायकै।
यहि लागि तुम सौं मंत्र बूझत वीर ! सीस नवायकै ।।

इसका उत्तर षड्मुख इस प्रकार देते हैं——

षटमुख कह्यौ 'करौं का भाई।
है कर्तव्य अमित दुखदाई ।।
ह्वै कै देव चमूचय नायक।
क्यौं तिनकौ नहिं बनौ सहायक' ।।

चकवा-चकई के वियोग का कथन इंद्र के मनोभावों के अनूकूल ही हुआ है। प्रकृति के इस स्वच्छंद वायुमण्डल में इंद्र ने 'मातु-तिया-सुत-देस' की चिन्ता में न जाने कितनी रातें रो-रोकर बिताई होंगी। अंत को उसे मरालों की एक जोड़ी मिल जाती है, जिससे हृदय को कुछ ढाढ़स बँधता है। उन्हीं के द्वारा कालिदास के 'मेघदूत' और नैषध के 'हंसदूत' की तरह वह अपना विरह-संदेश अमरावती को भेजता है। 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के कवि की इस कथा के प्रसंग में यह मौलिक कल्पना है। यह अवश्य है कि दैत्यों के आख्यान में इससे किंचित् व्याघात पड़ता है, पर इस 'हंस-संदेश' का सौन्दर्य कथा में अवांतर उपस्थित करते हुए भी पाठक को मोह लेता है। इन्द्र के संदेश में उसकी वियोग-व्यथा का रुदन नहीं, अपितु पत्नी के लिए ढाढ़स और आश्वासन के वचन हैं। पुरुषत्व की प्रतिष्ठा के लिए यह उचित ही है कि उसकी वियोग-व्यथा शब्दों में व्यक्त न होकर ऐसे कार्यों में व्यंजित हो जो स्त्री के लिए सांत्वना-प्रद हों। इन्द्र कहता है——

तेरे ही पुन्नि प्रभावनि सौं,
कुसली अबलौं सुनौ बालम तेरे।
पायौ सँदेसौ नहीं तुम्हरौ,
नित याही अँदेसनि सौं रहैं घेरे।
धीरज धारौ हिये मैं तिया,
औ निरासहि आवन दीजै न नेरे।
एक न एक दिना सुमुखी !
सुख के कबहूँ दिन आइहैं मेरे।
भूलिकै आपु कहूँ जननी——
समुहे जनि लोचन बारि बहैयौ।

आवै जबै हमरी सुधि तौ,
सबही बिधि सौं तिन्हैं धीर धरैयौ।
त्यौं मधुरी मधुरी बतियानि,
जयन्त कौ प्यारी सदा बहरैयौ।
मानियौ यामैं अनैसौ नहीं,
कबहूँ कबौ रम्भहु के घर जैयौ।।

देवताओं की हार हो चुकने पर उनमें बड़ी बेचैनी फैलती है, और अपने अपने प्राणों की पड़ जाती है। दैत्यगण अमरावती की लूट की तैयारी करते हैं। इस अवसर पर इन्द्र-जननी के निम्न कथन से दैत्यों के पक्ष का औचित्य सिद्ध होता है—

'हे सुत! देखौ कहा ह्वै गयो,
अब और कहा करिबे अभिलाख्यौ।
दीन्हों तिन्हैं सम भाग नहीं,
फल याते कुनीतिहु कौ तुम चाख्यौ।
घेरी चहूँ दिसि सौं नगरी,
यह देखिकै धीरज जात न राख्यौ।।

इतना ही नहीं, उसी इन्द्र की माता जिसने अपनी गुरु-पत्नी के साथ व्यभिचार किया था, अपने पुत्र को आश्वासन देती है—

मेरो अँदेसो करौ न कछू,
बलि मोंहि बिलोकि बिनीति दिखाइहै।।
त्यौं अबला गुनिकै बर बीर,
पुलोमजा पै नहिं हाथ चलाइहै।।
औ नृप-नीति कौ धारि हिये,
न जयन्तहु की दिसि दीठि उठाइहै।
बैर है वाको लला तुम सौं,
हम लोगनि सौं कटु क्यौं बतराइहै।'

जिन दैत्यों ने इन्द्र की पत्नी और पुत्र के साथ अत्यन्त उदारता का सलूक किया, उन्हीं की माता के गर्भ का इन्द्र ने छलपूर्वक खण्डन किया। दैत्यपन और देवतापन का यह विरोध देखने योग्य है।

इधर अमरावती पर दैत्यों का अधिकार हो जाता है, उधर इन्द्र प्राण लेकर मानसरोवर में जा छिपता है। इन्द्र की यात्रा में कवि के पार्वतीय-

प्राकृतिक वर्णन अनूठे हैं। निस्सन्देह कवि को इन वर्णनों की प्रेरणा कालिदास से मिली है, फिर भी हिंदी में ऐसे वर्णन प्रायः नहीं मिलते। निम्नलिखित सवैया की अंतिम पंक्तियों में कैसी अच्छी व्यंजना है--

राजमरालनि की अवली,
तट पै जहाँ केलि करै मदमाती।
त्यों चकई चकवा के बियोगनि,
ह्वै रही है बिरहानल ताती।
नूपुर की धुनि कौ सुनिकै,
नभ की दिसि हंसनि को भ्रम खाती।
धारे संतोष कछू हिय मैं,
लखि देव-तिया-गन कौ अँगराती।।

इधर इन्द्र मानसरोवर में छिपकर दिन यापन करता है, उधर दैत्यों की वृद्धि से पीड़ित देवगण भगवान् से उद्धार की प्रार्थना करते हैं और उन्हें संतोष तब होता है जब भगवान् स्वयं वामन-रूप में अदिति के गर्भ से जन्म धारण करने का आश्वासन देते हैं। अदिति के गर्भालिस-सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और कालिदास के टक्कर का हुआ है--

सिथिलाई चढ़ै लगी अंगनि पै,
सरलौं मुख पंकज पै पियराई।
रुचि मृत्तिका खान में होन लगी,
तन छाम मैं औरौ बढ़ी दुबराई।
कुच दोउन के मुख पै बर बाम के,
ऐसी लसी कछु स्यामलताई।
अरबिन्दनि के मनौ कोसनि पै,
भ्रमरावलि की छबि मंजुल छाई।।

इसके बाद वामन का जन्म होता है। वामन के शैशव का वर्णन कवि ने सूरदास जैसी स्वाभाविकता के साथ किया है। देव-स्त्रियाँ वामन को अपनी भावी आशाओं का आधार मानती हुई उनको कितना प्यार करती हैं, इसका अन्दाज़ा नीचे के दो उदाहरणों से लग सकता है।--

दृग अंजन रंजन कोऊ करै,
सुठि सीस के बार सँवारै कोऊ।
हरखाय कै गोद मैं लेय कोऊ,
कर-कंजनि मंजु उछारै कोऊ।

मुसकानि पै सुन्दर वा सिसु की,
मनि मानिक सौं मन वारै कोऊ।
लगि जाइ न दीठि कहूँ यहि के,
भरि नैन न बाल निहारै कोऊ।।
पलना पर पारिकै वा सिसु को,
तिय मन्द ही मन्द झुलावै कोऊ।
हलरावनि औ दुलरावनि मैं,
अनुराग के रागनि गावै कोऊ।
पुचकारि कै ताहि हँसाइबे कौ
चुटकौनि प्रबीन बजावै कोऊ।
पुनि रोवत जानि कै अंक मैं लै,
अपनो पय बाम पियावै कोऊ।।

वामन शनैः शनैः बढ़ता है, तुतली बोली बोलने लगता है, गुरुजनों को हाथ उठाकर प्रणाम करना सीख जाता है, सांगोपांग वेदों का अध्ययन करता है, सामगान में विशेष व्युत्पन्न हो जाता है। वामन का संगीत कितना प्रभावोत्पादक है? जड़-चेतन पर उसका कैसा असर पड़ता है? देखिए——

बीनै गहै सुर सुन्दरी त्यों
कुसुमावली टूटैं मँदारनि दाम की।
बावरी कोऊ इती बनि जाय,
नहीं रहिजाय तिया कोऊ काम की।
कैसेहु मानै मनाये नहीं,
बिसरै सुधिहू बुधि यों सुर-बाम की।
तुंग तरंगें उठैं हिय-सिन्धु मैं,
गावन लागैं रिचा जबै साम की।।

बाल-सौंदर्य के वर्णन में हमारे कवि की वृत्ति कुछ अधिक रम गई है। इसमें उसे सफलता भी काफ़ी मिली है। वामन ही नहीं, उषा के बालरूप का उल्लेख करने में भी उसने पर्यवेक्षण और अनभूति की सूक्ष्मता का खासा परिचय दिया है। उषा लड़की है। वह गुरु-गृह पढ़ने को जाती है। पर पढ़ती क्या है——

'एक' 'नौ' 'सात' 'प' 'ना' 'मा' पढ़ै,
कबौं लैखनी कौ उलटी मसि बोरै।

आँगुरी सौं पटिया पै लिखै,
खरिया तेहि माहि मिलाय कै घोरै।
नैकु बुलाये न बोलै कबौं,
कबौं खीझि कै केतो मचावति सोरै।
मूरति लौं गड़ी रहै,
पै पुकार सुनेही भगै बर जोरै।।

वामन कुछ सयाना होता है। एक दिन अपनी माता को रात भर जागते और रोते देखकर हठ करके उसके दुःख का कारण पूछता है। माता पहले तो कुछ संकोच करती है, फिर दैत्यों-द्वारा अमरपुरी की लूट और इन्द्र के पराभव का सारा वृत्तांत बतलाती है। वामन बलि के यहाँ जाते हैं और उनसे दान में तीनों लोक माँग कर उन्हें पाताल भेज देते हैं। इस प्रकार फिर अमरपुरी में इन्द्रत्व की प्रतिष्ठा हो जाती है।

बाणासुर—जो कि बलि के यज्ञाश्व के रक्षार्थ बाहर गया हुआ था, जब लौटकर आता है तब राजधानी में दैत्यों का निशान भी न पाकर बड़ा दुखी होता है। वह वहाँ से जाकर 'सोनितपुर' में अपनी राजधानी बनाता है। वहीं उसके एक पुत्र स्कन्द और एक कन्या उषा का जन्म होता है।

स्कंद राजनीति में पारंगत होता है और उषा ललित कलाओं में। उषा और अनिरुद्ध की कथा प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में भी कवि की कला का अच्छा निखार देखने को मिलता है। शृङ्गार का शायद ही ऐसा कोई अनुभव या संचारी छूटा हो जिसका समावेश उषा-अनिरुद्ध के प्रकरण में न हो गया हो। इस प्रकार इस स्थल पर पूर्ण शृङ्गार के दर्शन होते हैं।

ऊषा कह्यो "सखी ! देखु वृथा,
ये चकोर रहैं निसि मैं हमैं घेरे।
त्यौं मदमाते मलिन्दन वृन्द,
करें मुखमण्डल पै नितै फेरे।
देखौं तड़ागनि माँहि जबै,
मुंदि सम्पुट जात सरोजनि केरे।
कारन याको कहा सजनी,
तुमही कहौं ध्यान न आवत मेरे।
भाजन के जल मैं सफरी,
औ लखाइ परै कबहूँ जल जात हैं।

पैं जबै पानि सौं चाहौं उठावन,
जानै कहाँ ते कहाँ वै बिलात हैं।
और कहाँ लौं कहौं सजनी,
दृग कानन सौं बढ़तै मिले जात हैं।
द्वै दिन ते कछू जानी नहीं,
मन और के और कहाँ भये जात हैं।
मन रंजन खंजन के चटुआ,
अँगना मैं कहा दृग खोलैं नहीं।
परे पंजर में चकवा चकई,
औ चकोरिनी मंजु कलोलैं नहीं।
केहि बैर सौं वै सुक सारिका चारु,
बुलायेहू ते मुख खोलैं नहीं।
तिमि गावन में पटु कोयलियाँ,
मन सामुने क्यों मृदु बोलैं नहीं।
अंगराग न अंग लगावै सखी,
पग जावक नायन लावै नहीं।
नहिं अंजन आँजै अली दृग मैं,
बिरिआइन बीरी रचावै नहीं।
गुहि सोन-जुहीनि के मजुहरा,
गरे मालिनिया पहिरावै नहीं।
जेहि भौंन मैं बैठों तहाँ निसि मैं,
परिचारिका दीप जरावै नहीं।

उक्त विवेचन से पाठकों को 'दैत्यवंश-महाकाव्य' के सुन्दर-सुन्दर स्थलों का कुछ परिचय मिल गया होगा। यह काव्य प्रधानतया वर्णनात्मक है। 'दैत्यवंश' के छः राजाओं का एक साथ वर्णन होने के कारण इसमें रसपरिपाक की उतनी गुंजायश नहीं है जितनी एक व्यक्ति के नायकवाले काव्यों में हो सकती है। फिर भी यत्र-तत्र रस के छींटे अत्यन्त रमणीय हैं। व्रजभाषा-काव्यों की प्रस्तावनाओं में लोग अलंकारों की गणना कराना, तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, व्याजोक्ति, निदर्शना आदि के उदाहरणों पर वाह-वाह करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हम यह कार्य पाठकों और साहित्य के उन विद्यार्थियों के लिए छोड़ते हैं जिन्हें इनका शौक़ हो या जो परीक्षा की तैयारी कर रहे हों।

हम केवल इतना ही कहेंगे कि अलंकारों के उदाहरण भी इस काव्य में कम न मिलेंगे।

भाषा के ऊपर कुछ अधिक न लिखने का निश्चय हमने पहले ही प्रकट कर दिया है। रीतिकाल के अनेक कवि जब व्रजभाषा के रूप को न निखार पाये तब आज हम उसके द्वारा काव्य-प्रणयन करनेवाले कवियों को क्यों बतायें कि उन्होंने अमुक स्थलों पर व्रजभाषा के परंपरागत प्रयोगों में व्यतिक्रम कर दिया है या उनका अमुक प्रयोग व्रज की बोली के प्रतिकूल है। महाकवि रत्नाकर ने व्रज को काव्य-भाषा के रूप में ढालने का प्रयत्न किया था—— ऐसी काव्य-भाषा जिसके लिए व्रज-भूमि की बोली का अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं है। यदि इसी कसौटी पर हम 'दैत्यवंश' की भाषा को परखें तो उसे काफ़ी सुघड़, चुस्त और मुहावरेदार पायेंगे।

हमारा विश्वास है कि 'दैत्यवंश-महाकाव्य' पाठकों में लोकप्रियता प्राप्त करेगा और इस काव्य के कवि के साथ चिर तिरस्कृत दैत्यों को भी उनकी सहानुभूति प्राप्त होगी।

——उमेशचन्द्र मिश्र

———

अनुक्रमणिका

दैत्यवंश महाकाव्य

प्रथम सर्ग

मङ्गलाचरण

घनाक्षरी

(१)

ए जू वरदानी महारानी हंस वाहन की,
लै कै वीन आपु मोद मानिकै बजावो तौ ।
चेरो तेरो कवि "हरिनाथ" दैत्यबंस काव्य,
विरचत तामै सुधा-सोत सरसावो तौ ।
धुनि, रस, भाव, वृत्ति, भूषन, ललित रीति,
उक्ति, जुक्ति वलित अदूषित बनावो तौ ।
पग परि भेटत तुम्हारे कर कंजनि मैं,
करि कै कृपा की कोर याहि अपनावो तौ ॥

(२)

दैत्यबंस सम्भव नरेसनि चरित चारु—
पारावार पार तौ करत बनिहै नहीं ।
तव पद-पंकज सुमिरि कै अरम्भि ताहि,
छाँड़त अधूरो अब जिय मनिहै नहीं ।
जौ लौं नहिं हेरिहौ कृपा कै "हरिनाथ" ओर,
सुघर प्रबन्धनि कौ तान तनिहै नहीं ।
याते रसना पै आनि बैठौ पदमासनि जू,
पाय अवलम्ब दास स्रम गनिहै नहीं ॥

(३)

दैत्यकुल कुमुद कलाधर कुमारनि कौ,
कहाँ चारु चरित कहाँ या मति मोरी है ।
जानत न काव्य-भेद रुचिर प्रबन्धनि कौ,
तौ हूँ केती कलित कथानि लाय जोरी है ।
लैहैं भूल सुजन सुधारि, तौ कृपा है भूरि,
जो पै हँसिहैं तौ न हँसे हू कछू खोरी है ।
भारी व्यवसाय की वृथा है साध वाके हिय,
सम्पति सदन माहिं जाके अति थोरी है ।।

(४)

पद अरविन्द सारदा के दोऊ ध्याय मंजु,
सुमिरि महेस निज लेखनी उठाइहौं ।
लै कै सार सकल पुरान, काव्य, नाटक कौ,
आपनी हूँ ओर ते मैं कछुक मिलाइहौं ।
या विधि पुरान की कथा कौ काव्य रूप दै कै,
कविता प्रवीननि कौ मन बहराइहौं ।
याही ब्याज देवनि के बंधु दैत्यबंसिनि कौ,
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गाइहौं ।।

(५)

पालत अखण्ड ब्रह्मचर्य्य बालकाल ही तें,
पूजत पिनाकी के चरन ध्यान धरिकै ।
सास्त्र पढ़ि, अरु अस्त्र सस्त्रनि को सीखि सबै,
जाय वन विधिहि सतोषैं तप करिकै ।
भोगैं राज्य अभय अखण्ड महिमण्डल कौ,
मानत न संक पाकसासन कौ डरिकै ।
समर प्रचारत न हारत हिये मैं नैकु,
चण्डबाहु विक्रम परेसहू सौं लरिकै ।।

(६)

भागि जात छाँड़ि रन अंगन कुलिसधर,
मानत सुरासुर समूह जासौं हार है।
नीलमनि - सिखिर - कलेवर - विपुल - बल,
जाके पग धरत धरा पै परै भार है।
जाके उग्र तप सों प्रसन्न ह्वैकै दैकै वर,
बार बार हिय पछितात करतार है।
जासु के निधन करिबे के हित आपु जग,
पुरुष पुरातन धरत अवतार है॥

(७)

सासन करत जे सकल महिमण्डल कौ,
अम्बुरासि अमित चहूँधा जासु नाके हैं।
तौहूँ आसि-धार-व्रत सेवत धरा के संग,
कौहूँ भरि नैननि न देखैं दिसि ताके हैं।
पद्मपत्र पय मैं लसत जेहि भाँति नृप,
वैसियै सुहात बनि स्वामि वसुधा के हैं।
गेह में रहत, पै रहत मान जोगिन के,
हरि पद पंकज मरंद रस छाके हैं॥

(८)

तेज मैं तरनि, सास्त्रवपारग बृहस्पति लौं,
नारद लौं ज्ञानी, बल माँहि जे सुरेस हैं।
धीरज में हिमिनग, सान्ति मैं प्रसान्त सिंधु,
छमा मैं अवनि, अरु दान मैं महेस हैं।
गति मैं अनिल, औ अनल सत्रुनासन मैं,
पालत पिता लौं प्रजा, हरत कलेस हैं।
दारिद दुरन्त दुख द्वन्दनि करत दूरि,
कठिन कलेस कौ न राखै लवलेस हैं॥

(९)

तोरि हेमकूटहिं न बाँट्यो जग-जाचकनि,
देह धरिबै कौ तौ धरा मैं कहा सार है ॥
दान-हेतु सिन्धुनि उलीचि जौ न कीन्ह्यो मरु,
तौ तो यहि जीवनै हजार धिरकार है ।
जौ पै तिहुलोक स्वामिहू को न नवायो माथ,
मातु के गरभ कौ वृथा ही भयो भार है ।
व्यर्थ ही भये जो कल्पतरु कौ न भान्यौ मान,
ऐसो जेहि बंस के नरेस कौ विचार है ॥

(१०)

खेत समुहाय महाकाल, जमराज हू सौं,
भूलि पग पीछे कौ कदापि धरिबौ नहीं ।
जो पै त्रिपुरारिहू प्रचारैं रन अंगन मैं,
तौहू तिनहू की हिय भीति भरिबौ नहीं ।
आयुध-विहीन प्रति वीर पै समर माहिं,
कैसे हू तौ कबहूँ प्रहार करिबौ नहीं ।
पर धन धाम धरा वाम पै न दीबौ दीठि,
निज प्रन करि काहू भाँति टरिबौ नहीं ॥

(११)

दीन्ह्यौं जु पै विभव हमैं है करतार इमि,
तो पै दीनहीनन के दारिद न क्यौं दरैं ।
सासन सुधारन की योजना करैं न काहे,
याचना प्रजा की परिपूरन न क्यौं करैं ।
रवि ससि पावक करत करतव्य सब,
निज करतव्य सौ तौ तब हम क्यौं टरैं ।
रहत विचारत हिये मैं सदा भूप जौन,
सकल कलेस कौ प्रजानि के न क्यौं हरैं ॥

(१२)

ताही वर वंस माहिं दिति के गरभसन,
एकै समै जन्म दोऊ पुत्रनि जबै लये।
मन्द भौ प्रबल ताप तपत तपाकर कौ,
प्रबल प्रभंजनहूँ गति मति ख्वै गये।
उठन तरंग तुंग लागी अम्बुरासि माँहि,
अनल विहाय तेज धूममय ज्वै गये।
लाग्यौ पाकसासन सिंहासन हलन आपु,
चल भे अचल, औ अचल चल ह्वै गये॥

(१३)

कैधौं बल विक्रम के खम्भ निरमाय जग-
थम्भन के काज विधि आपुही सँवारे हैं।
कैधौं सौर्य साहस महीधर के सृंग युग,
वच्छ पै धरा के अति धीरता सौं धारे हैं।
कैधौं वीर-दर्प-स्वाभिमान-नवमन्दिर के,
कनक कलस ये लखात तेजवारे हैं।
कैधौं वृद्ध रवि को प्रताप छीन जानि, चतु-
रानन ने भानु जुग महिपै उतारे हैं॥

(१४)

सैसव बिताय मातु-गोद में अनन्दसन,
कछुक सयाने दितिनन्दन जबै भये।
सस्त्र अरु सास्त्र को अगाध अम्बु-रासि जौन,
ताके पार दोऊ अनायासहिं तबै गये।
लखि दोऊ बालनि गरुड़ औ अरुन सम
होत अभिलाख मातु ही तल सबै नये।
दोऊ निज जीवन कौ सफल बनाइबै कौ,
मेरु गिरि संग जाय तपन हियै ठये॥

(१५)

साधि प्रानायामहि बिताये दिन केते दोऊ,
दीठि रवि दिसि कै अँगूठा पै खरे रहे।
कछुक दिवस कन्द-मूल-फल खाये तिन,
सूखे तिन पात पुहमी पै जे परे रहे।
वारि औ बयारि सेयो कितने बरस लगि,
केतिक बरस निराहारहिं करे रहे।
जामि गये कीचक, पिपीलिका की बाँबी भई,
तौहूँ ध्यान संकर कौ हिय में धरे रहे॥

(१६)

घोर तप करत धरा पै दितिनन्दन हैं,
वाको ताप कोऊ जग माहिं सहिहै नहीं।
भूने जात तापनि त्रिलोकनि विलोकौ किन,
कोऊ देवलोकनि में चैन लहिहै नहीं।
याते चलि दोउन निहाल अब कीजै बेस,
तपि तप ऐसो कौन फल चहिहै नहीं।
जो पै चढ़ि हंस पै चलौगे नहिं वेगि नाथ !
रचना रुचिर रावरी या रहिहै नहीं॥

(१७)

या विधि सुनत दीन बैन देववृन्दनि के,
गौने विधि, दक्ष, भृगु साथहि लिवायकै।
और छिन माहिं मेरु मन्दर के स्रंग पर,
दोऊ तप करत पहुँचे तहाँ जायकै।
सींचि के कमण्डलु सलिल सों निवारि ताप,
बोले वर बैन दितिनन्दनै सुनायकै।
खोलौ किन लोचन सफल तप तेरो भयौ,
माँगौ मन चाह्यौ वरदान सुत आयकै॥

(१८)

सुनि चतुरानन के स्रवन सुधा से बैन,
दितिसुत दोऊ नैन खोले हरखायकै ।
परसि विधाता के जुगुलपद-कंजनि कौ,
लागे करै विनती अनन्द अति पायकै ।
माँग्यौ वर यहि सचराचर जगत माहिं,
मारै कोऊ रन मैं न मोहिं बिचलायकै ।
"एवमस्तु" कहि हंसवाहन मुनिन संग,
ब्रह्मलोक तुरत पहूँचे आपु जायकै ।।

(१९)

पाय कै अजेय वर इमि कमलासन सौं,
अतिहि अनन्द दितिनन्दन हिये भये ।
न्हाय ब्रह्मसर मैं, मुनिन पद बन्दि आपु,
प्रमुदित हिय निज सदन दुऔ गये ।
सनक सनंदन लौं आवत विलोकि तिन्हैं,
लाखन लौं मातु अभिलाषनि मनै ठये ।
लीन्ह्यौं उठि ललकि लगाय तिन्हैं अंक माहिँ,
अमित असीस दोऊ बन्धुनि हितै दये ।।

(२०)

मातु कौ अदेस पाय सुक्र कौ बनाय गुरु,
लागे हेमलोचन सुसासन करै जबै ।
त्यौंही निज सक्ति को प्रबल करिबे के हेतु,
कीन्ह्यो संधि आपु बोलि महिषासुरै तबै ।
वासकल, चामर, विडाल, असिलोमा, सुम्भ,
दन्तवक्र आदिन बुलायो तिनहू सबै ।
या विधि बढ़ाय निज बल दैत्य-बन्धु दोऊ,
देखै लगे युद्ध कौ है आवत समै कबै ।।

(२१)

ज्यौं ज्यौं नभमण्डल मैं रोकि रवि मारग कौ,
दैत्यकुल भूप के निसान फहरै लगे।
अरु कानजुर उपजावनी प्रचण्ड धुनि,
करि करि ज्यौं ज्यौं रन धौंसा घहरै लगे।
कंपत है प्रबल प्रभंजन सौं जैसे तरु,
त्यौं त्यौं जिय थामि देववृन्द थहरै लगे।
ह्वैहै अमरावती की हाय कौन-सी धौं दसा,
सुमिरि सुरेसहू हिये मैं हहरै लगे॥

(२२)

दिति मयदानवै बुलाय बनवायो दिव्य-
मन्दिर, छुवत जाके कलस अकास हैं।
रथ टकराय टूटि जैहै यह भीति मानि,
जान देत अरुन न बाजि बाके पास हैं।
फटिक बिल्लौर की रुचिर जासु भीतिन पैं,
नीलम पुहपराग पुष्प आस पास हैं।
बिद्रुम सोपान, खम्भ मरकत ही सो जरे,
लागत सुरेस कौ अवास जाको दास है॥

(२३)

वाटिका विचित्र यहि भाँति सौ बनाई जाहि,
देखि चैत्ररथ कौ गुमान गरि जात है।
लागे बहु जाति के विटप फल फूल वारे,
जाकी गन्ध सूँघि कै हियो ही हरि जात है।
विकसे वनज वन वगरि वहार वारे,
परिमल पाय भौंर भीर भरि जात हैं।
त्यौंही रितुराज कौ लुभाइबे के काज मानौ,
कूजन कलित खगवृन्द करि जात हैं॥

(२४)

यहि विधि दोउन विचारि कै विवाह योग,
ब्याहि मातु सौंप्यौ तिन्हैं सासन को भार है ।
जेठहि बनायो नृप, अनुजहि युवराज,
राखत हिये मैं बन्धु प्रेम जो अपार हैं ।
बीते यहि भाँति ग्रह सुख मैं बरस केते,
सुत हेम कस्यप के उपज्यो अगार है ।
त्यागि वंस नीति कौ, विहाय उग्र तेज आपु,
बनि गयो भक्तनि हिये को मंजु हार है ॥

(२५)

ज्योतिषिन जबहि बुलाय दति पूछ्यौ आप,
भाख्यौ तिन याकी पितु सौ तौ बनिहै नहीं ।
निज गुन गौरव औ ज्ञान गरिमा मैं यह,
और की कहा है, गुरु हू कौ गनिहै नहीं ।
कोऊ बिचलाओ किन याहि धर्म्म मारग तैं,
भूलिहू कै काहू की सो बात मनिहै नहीं ।
ह्वैहै भक्तराजनि सिरोमनि जदपि यह,
तौ हू यहि राज कौ अधीस बनिहै नहीं ॥

(२६)

ह्वैहै सत्रु पच्छ कौ समर्थक प्रबल यह,
बालपन ही मैं त्यौं कलेसनि को झेलिहै ।
धारिहै पुनीत व्रत सत्य आग्रहै को आपु,
मोरिहै न मुख निज प्राननि पै खेलिहै ।
निज मनमानी यह करिहै सदा ही वीर,
बरबस मंत्रिन की सम्मति को ठेलिहै ।
बोरो चहै सिन्धु मैं, जरावौ चहै ज्वालनि मैं,
मरिहै न तौ हूँ, चाहै विष मुख मेलिहै ॥

(२७)

तिनहिं बिदा कै, लाग्यो कहन कनकनैन,
　　दीन्ह्यौ सबनै जो मोंहि राज अधिकार है ।
तो पै दिगविजय करन काज बन्धुवर,
　　रावरे हिये में कहौ कौनधौं विचार है ।
"जैसो होय आयसु तुम्हारौ" कहि गौन्यो वीर,
　　लीन्ह्यो गदा हाथ, पै न कटक अपार है ।
लाँघत सरित जात एक ही फलाँग मारि,
　　चूरन करत जात पथ के पहार है ॥

(२८)

बाँकी हाँक जाकी सुनि असनि निपात सम,
　　रवि-रथ-बाजि मग छाँड़ि भरकै लगे ।
धारत धरा पै पग खसके महीधर हू,
　　थारा पर पारा पारावार हरकै लगे ।
जानि के अकाल ही प्रलै के सब ठान ठये,
　　सकल सुरासुर के हिय धरकै लगै ।
भागे छाँड़ि आसन कौ आपु पाकसासन हू,
　　त्यागि अमरावती अमर सरकै लगे ॥

(२९)

यच्छ, रच्छ, किन्नर, विद्याधर, पिसाच, भूत,
　　गुह्यक उरग प्रेत सामुहे जुरै नहीं ।
त्योंही तिहुलोक मै दिखात है न ऐसो वीर,
　　जाको हिय भूरि-भय-भायनि भरै नहीं ।
गर्भपात ह्वै गये कितेक देवदारनि के,
　　निज मन धीर कोऊ नैसुक धरै नहीं ।
साहसी न कोऊ है लखात दिवि, आँखिन सों—
　　अस्रु-माल जाके तरराय कै ढरै नहीं ॥

(३०)

बैठ्यो जाय आपु सुरराज के सिंहासन पै,
आय अवसेष देवपायनि सबै परे।
त्योंही मनिमानिक औ, हीरा मुकतानि मंजु,
नाय सीस भेंट लाय सामुहे तबै धरे।
देखि इमि चरन नमत देवबृन्दनि कौ,
धीरज बँधाय तिन सबनि अभै करे।
तौहूँ उग्र लोचन विलोकि हेमकस्यप कौ,
रहत विपुल भीति सकल हिये भरे ।।

(३१)

उत सुरवृन्द केते छाँड़ि निज गेहनि कौ,
पुरुष पुरातन की सरन सबै गये।
त्यौंही दैत्यबंधुनि के कारज-कलापनि कौ,
दोऊ कर जोरि इमि कहत तबै भये।
जो ये मिलि जैहें दोऊ बन्धु कहूँ एकै साथ,
तौ तौ नाथ जाइहैं न काहू भाँति तं हये।
याते आपु एक कौ बिदारौ तौ कृपा कै भूरि,
दूजे कौ हनें कै ठान जाइहैं तबै ठये ।।

(३२)

आरत ह्वै विपुल पुकारत सुरन सुनि,
मधुर गिरा सौं तिन्हें धीरज धरायकै।
गौने पुरषोतम तुरत तजि लोक, हेम–
लोचनै निपातिबे को हिय ठहरायकै।
नीलमनि सैल सौं बराह कौ विकट वपु,
आये आपु, वाकी राज तुरत बनायकै।
वाटिका मैं कीन्ह्यो त्यौं प्रवेस छद्म वेसकरि,
पारिखा प्रबल तुण्डघात सौं गिरायकै ।।

(३३)

तोरै लागै तरुन, विदारिकै गुलाब रौसैं,
कमल कलाप कौ नसाय छन मैं दियो ।
त्यौंही सुधा सरिस सरोवर सलिल कहँ,
पंक जाल आपु रौंदि पायनि सत्रै कियो ।
घुर घुर घोर रव पूरि दिगमण्डल मैं,
दीन्ह्यौ हहराय बागपालनि हूँ कौ हियो ।
और याही व्याज मानौ बीर हेमलोचन कौ,
समर प्रचारि कै बुलाय उत ही लियो ।।

(३४)

वाटिका कौ पालक असुरगन खाय भय,
धाय जाय दैत्यराज-द्वार पै पुकारै है ।
महाराज ! आयौ एक विकट बराह आजु,
राज-वाटिका कौ वह निपट उजारै है ।
अबलौं न ऐसो कोल देख्यौ है कतौ हू कौहूँ,
कज्जल कुधर के सरिस बपु धारै है ।
लै लै प्रान भागैं सबै रच्छक तहाँ ते आपु,
आयुध न कोऊ बीर वापै नाथ डारै है ।।

(३५)

ताके मुख विकट बराह कौ सुनत नाम,
धायौ हेमलोचन अमित रिसिआयकै ।
देख्यौ तहाँ ध्वंस अवशेष परिखा को चहूँ,
धावत वराह अति घोर घुररायकै ।
लैकै कुन्त जबहिं सरोष ललकारचौ ताहि,
झपटचौ तबै ही कोल तुण्डहि उठायकै ।
घाल्यो घाव कुन्तल को ज्यौंही तासु सीस पर,
खण्ड खण्ड ह्वै के सो धरापै परचौ आयकै ।।

(३६)

नैकहू न हिय मैं सकान्यौ दैत्यनन्दन पै,
विफल विलोक्यो जबै कुन्त को प्रहार है ।
सैनदै बुलाय निज सैनिकै निकट आपु,
लीन्ह्यौ खैंचि कोष तैं कठिन करवार है ।
छिटकी प्रभा त्यों प्रलै भानु की मयूषनि लौ,
कीन्ह्यौ कोपि कोल के कलेवर पै वार है ।
कज्जल महीधर के स्रंग सम देह पर,
लागत ही कुंठित भई पै तासु धार है ।।

(३७)

लाग्यौ दितिनन्दन विचारै निज हीय माहिं,
यह वन पसु तौ अमित बलभौन है ।
गनत न रंचक प्रहार मम आयुध कौ,
सामुहे करत मेरे पौन सम गौन है ।
घाले केते घाय याके देह पै सकोपि हम,
कैसे हू पिछारी पग धरत न जौन है ।
टूटचौ कुन्त कुंठित भई है तरवार धार,
जानि नहिं परत वराह यह कौन है ।।

(३८)

अस गुनि सैनिक सौ लैकै बज्रसार गदा,
कोपकै महीप तासु सीस पै प्रहारचौ है ।
निकसत ज्वाल जाल अरुन विलोचन सौं,
टूटी गदा जात पै वराह नहिं टारचौ है ।
कज्जल के कूट सो अचल ताहि आगे लेखि,
दैत्य-कुल-केतु पै न नैकु हिय हारचौ है ।
हाँक मारि ठोंकि कै प्रचण्ड ताल ताही समै,
वासौं भिरिवै को तबै मन में विचारचो है ।।

(३९)

भाग्यो छल साजि कै वराह महासर दिसि,
तामैं पैठि भूपहि प्रचारचौ घुरघुरायकैं।
ताकौ लखि दैत्य-कुल-केतु कछु सोचे बिन,
फाँदि परचो आपुहू सकोपि अररायकै।
लै गयौ नरेसैं खैंचि सलिल अगाध जहाँ,
तिनकौ डुवायौ निज बल सौं दबायकै।
तुण्ड दन्त घात सौं बिदारि कै उदर अरु,
लायौ तिन्हैं धारि ताहि ऊपर उठायकै॥

(४०)

या विधि निपाति हेमलोचनै मुदित हरि,
देव-काज साजि निज पुरमैं तबै गये।
इत नगरी मैं नरनाह को निधन भयौ,
कैधौं दैत्यकुल के अदित्य ही अथै गये।
विकल विहाल दिति विपुल विलाप कीन्ह्यौ,
बहु समुझाय सुक्र धीरज तिन्हैं दये।
विधिवत नृप कौ करायौ अन्त-संसकार,
प्रहलाद ही सौं न विषाद जिनके हिये॥

(४१)

वाके वध सोक कौ भुलावन के हेतु मानौ,
तिय प्रहलाद की सुबन उपजायौ है।
रोचन भयो सो दैत्यबंस माहिं याही लागि,
वाकौ नाम सबन बिरोचन धरायौ है।
प्रतिपद चंद सौं बढ़त लखि वा सिसु कौ,
दिति ने अपार निज हीय सुख पायो है।
अरु निज कुल की समुन्नति के हेतु वाम,
लाखनि तौ वामै अभिलाखनि लगायौ है॥

(४२)

निवसत उत हेम कस्यप अमरपुर,
असगुन होन वाकौ नितहि तबै लगे।
फरकत वाम नैन, और वाम बाहु वाके,
धरकत हीय मानौ कहन सबै लगे।
गवन्यो तुम्हारो, जेठो बन्धु जमराज गेह,
तुमहू बतावौ, उतै आइहौ कबै लगे।
उठत बवंडर विचारनि कौ हीतल मैं,
नैननि सों आपु अस्रुमाल हूँ चुवै लगे ॥

(४३)

आयौ निज राज कौ विलोक्यो सबै सोक साज,
मातै लखि दुखित व्यथित हिय मैं भयौ।
धीरज बँधाय तिन्हैं, भाभिहि प्रबोधि कह्यौ,
"बिधि कौ विधान भला टारचौ हू कहूँ गयौ।
जानत हौं बन्धुहिं संहारचौ हरि नै है आपु,
याही लगि हमहू विचार मन में ठयौ।
दीन्ह्यौ अरि सोनित सो अंजुलिन जो पै ताहि,
जन्म हेमकस्यप ने जग में वृथा लयौ।"

(४४)

ऐसो जिय ठानि निज दैतनि बुलाय बोल्यौ,
"आजु ही ते सत्रु देववृन्दनि कौ जानौ तौ।
जारौ हरिभक्तिनि, उजारौ भक्तिमारग कौ,
विधि के विरोध कौ सकल ठान ठानौ तौ।
जोग जप जज्ञ तप करन न पावै कोऊ,
आपु वाम मार्ग कौ प्रचार मन आनौ तौ।
देखे रहौ हान कष्ट पावै पै प्रजा कौ नाहिं,
इतने निदेस निज सीस धरि मानौ तौ ॥"

(४५)

यहि विधि उग्र निज नाथ को अदेस सुनि,
आयुध लै दैतगन धावन तबै लगे।
तपत पंचागिन करत अथवा जे होम,
अग्निकुण्ड डारिकै जरावन सबै लगे।
ध्यावत परेसहिं सरित तट नैन मूँदि,
तिन्हैं वारिधारा मैं बहावन अभै लगे।
पाद कौ प्रहार कै जगावत मुनिन, हुते—
बैठे जे समाधि कौ लगाये ही अबै लगे॥

(४६)

हाहाकार तबही सुनत मुनिवृन्दनि कौ,
आन्यौ प्रहलाद करतव्य निज मन मैं।
मान्यौ नहिं पितु को निदेस, भरकायौ आगि,
ठानि सत्यअग्रहै प्रबल देवगन मैं।
ह्वै कै राजपुत्र दीन्ह्यौ साथ तपसी जन कौ,
मोरयो नहिं मुख घोर जम-जातननि मैं।
वैई विस्ववन्दनीय वीर हैं बसुन्धरा पै,
छाँड़ै नहिं आन जौलौं प्रान रहैं तन मैं॥

(४७)

या विधि निरंकुस निहारि हरनाकुस कौ,
पुरुष पुरातन सौं तब न रह्यौ गयो।
धरि नर-केहरि वपुष आपु आये तहाँ,
ताहि ललकारि मल्लयुद्धहिं तबै ठयो।
कीन्ह्यौ घोर समर यदपि दैत्य भूपति नै,
नखनि बिदारि कै उदर तेहि कौ ह्यो।
देखत ही सबके संहारि कै असुरराज,
देव-मुनि-वृन्दनि कौ आनन्द हितै दयो॥

(४८)

सुनि इमि निरदै निधन हरनाकुस कौ,
धाड़ मारि रोय दिति अवनि तबै परी ।
तीय की हिया की गति तुरतहि बंद भई,
कोऊ कह्यौ राजमातु देखौ तौ अबै मरी ।
गुरु को अदेस मानि तबहि विरोचन नै,
विधिवत दोउन की सपदि क्रिया करी ।
ह्वै है अब कैसे निरबाह हम लोगनि कौ,
इमि जिय संक मानि रहत प्रजा डरी ॥

(४९)

सुक्र कौ अदेस पाय मंत्रिन समाज कीन्ह्यौ,
आये सब दैत्य तहँ कौतुक बढ़ायकै ।
कीन्ह्यौ प्रसताव तिन सामुहे सचिव आपु,
राज के प्रबन्ध कौ उपाय ठहरायकै ।
दारुन समै में जब होत है कपट युद्ध,
ह्वै है भूल निबल महीपति बनायकै ।
याते प्रहलादहि न दीजै राज काहू भाँति,
थापियै विरोचनै सिंहासन पै आयकै ॥

(५०)

सुनत सचिव प्रस्ताव कह्यो गुरु मतौ हमारौ ।
सब मिलि कै अब राज विरोचन कहँ बैठारौ ।
असिलोमा, रुद्रवक्र, आदि जे वीर हमारे ।
रहिहैं राज प्रबन्ध सकल ये आपु सम्हारे ।
अरु सकल मंत्रिगन सजग ह्वै करिहैं निज निज काज को ।
बस याही में अब है भलो दैत्यबंस के राज को ।

द्वितीय सर्ग

रोला

(१)

इमि गुरु सौं लहि राज भये नरपाल विरोचन,
पै नहिं नव नृप नीति सके अवलम्बि सकोचन ।
जदपि रहत प्रहलाद राज काजनि तें न्यारे,
राखत तिनको तदपि हीय गौरव नृप धारे ।।

(२)

यह सुनि सुरगुरु सहित आपु सुरपति तँह आये,
स्वागत कियो नरेस अधिक उर आनँद छाये ।
अमित विनय दरसाय कह्यो नृप "अति भल कीन्ह्यों,
जो यहि औसर आय आपु दरसन मोहिं दीन्ह्यों ।।

(३)

कृपा चाहिए गुरुन अवसि बालनि पै ऐसी,
भलेहि भूल सों होय जदपि कोउ बात अनैसी ।"
कह सुरेस "हम तुमहिं आपनो पौत्रहि मानत,
पूर्व वैर कौ भाव नाहिं रंचक हिय आनत ।।

(४)

धरा धाम धन हेतु कहूँ ह्वै जाति लराई,
बालन पै नहिं जात तासु की कसरि चुकाई ।
एक बबा के वंस माँहि उपजे हम दोऊ,
परे कछू मन भेद नाहिं दूजे हम कोऊ ।।

(५)

याते अब सुत समुझि बूझि ऐसो कछु कीजै,
वंस वैर कौ लाभ सत्रु कहँ लैन न दीजै।
जानै पसु वपु धारि जुगुल बन्धुन किन मारे,
कहत तिन्हैं पुर लोग 'ईस' हिय बिनहि बिचारे ॥

(६)

जो पै काहू भाँति सोध उनको कहुँ पैये,
बंधु वधन कौ तिन्हहिं मारि बदलो चुकैये।
वैरिन वंस विरोध जानि काहू विधि पायो,
धरि पसु रूप अनूप बंधु के प्रान नसायो ॥

(७)

याको कारन तात एक मेरे मन आवत,
पै जिय होत सकोच रहस ताको बतरावत।
विपुल-काय बरवीर सैन मैं रहत तुमारे,
हैं दस्युन के मीत बनत राउर रखवारे ॥

(८)

लहि अवसर अनुकूल तिनहिं करि आपु अगारी,
सिंहासन सौं तुमहिं देहिं कहुँ ये न उतारी।
दस्युन सौं करि सन्धि न कहुँ निज सक्ति बढ़ावैं,
अरु यहि विधि दल बाँधि न कहुँ तुम पै चढ़ि आवैं ॥

(९)

याते सुत कछु सोचि समुझि अरु मानि हमारी,
असुर कुचालिन देहु सैन ते आपु निकारी।
विधिवस अपनो गात सरत अथवा पकि आवत,
बुधजन करत न वार तुरत ताकहँ कटवावत ॥

(१०)

हम सौं देवन लेहु प्रबल निज सैन बनावहु,
करहु अकंटक राज हिये चिन्ता जनि लावहु ।
ये हैं तुम्हरे बंधु प्रान तुम्हरे हित दैहैं,
रखिहैं कुल को मान काम गाढ़े पर ऐहैं ।।

(११)

दन्तवक्र, असिलोमादिक, जे असुर तुम्हारे,
अनाचार अति करत प्रजनि सब देत उजारे ।
तिन सब केतिक बार जबै निज दूत पठाये,
तव सुत अपनो मानि तुम्हें समुझावन आये ।।

(१२)

तिनके प्रतिनिधि आय बार ही बार पुकारत,
महाराज ये असुर हमैं मारे अब डारत ।
नित ही माँगत भेंट कहाँ एतो धन पावैं,
कहाँ जायँ तजि देस जहाँ निज प्रान बचावैं ।।

(१३)

कहियो सुक्रहु सौं न तात या मैं है कारन,
निज सुत कहँ वह चहत राज आसन बैठारन ।
अरु तारक सौं चहत देवयानी को ब्याहन,
या लगि अनहित लखत रहत कीन्हें हिय पाहन ।।"

(१४)

कह गुरु "यह प्रस्ताव सुक्र निसपति सौं कीन्ह्यौ,
पै अनुचित सम्बन्ध जानि तिन उतर न दीन्ह्यौ ।
तब सौं कछु खिसियाय अहित देवनि को चाहत,
वैर बँधावन काज सदा हिय रहत उमाहत ।।"

(१५)

इमि कैतव नय निपुन सुरप नृप कहँ समुझायौ,
लहि उत्तर अनुकूल लौटि अमरावति आयौ।
मानि बबा के बैन समुझि निज कुल आचारन,
लगे प्रजा कल्यान हेतु नृप मंत्र विचारन ।।

(१६)

कियो सुरप बिस्वास कह्यौ गुरु सौं कछु नाहीं,
पै सब वचन प्रकास कियौ अपने पितु पाहीं।
सुनि हँसि कह प्रहलाद "करिय जनि तात! अँदेसौ,
तेहि को सकत बिगारि जासु रच्छक हैं केसौ ।।

(१७)

राजपाट सब त्यागि लगे हरि चरनन माहीं,
तौ हूँ माया मोह देत कैसेहुँ कल नाहीं।
तुम तौ हौ सब जोग्य हिताहित आपु विचारौ,
समुझि बूझि सब बात कार्यक्रम कौ निरधारौ।।"

(१८)

इमि लखि जनक विराग, हितू सुरपति कहँ जान्यो,
तिनके मत अनुसार काज करिबोई ठान्यो।
कबहुँ आय जो प्रजा असुर प्रतिकूल पुकारत,
तासु पच्छ नृप लेत ताहि अपमानि निकारत ।।

(१९)

मुदित देत वरवीर प्रान रनखेतन माहीं,
पै अनुचित अपमान सकत अपनो सहि नाहीं।
स्वामिभक्ति पै सोचि, नृपति पद सीस नवाये,
कियो न नेकु विरोध त्यागि पद बाहर आये ।।

(२०)

यहि विधि सुम्भ, निसुम्भ, जम्भ, चामर, अरु सम्बर,
हयग्रीव, मय, नेमि, संकुसिर, उत्कल, डम्बर।
मधुकैटभ, दल मिले, कोउ माहिष महँ जाई,
पै नहिं विप्लव कीन्ह कठिन करवाल उठाई ॥

(२१)

या विधि तिनहिं निकारि भूप सुरलोगनि राख्यौ,
अरु सुरसेन-नियुक्त करन हित हिय अभिलाख्यौ।
इमि सब असुर समूह जबै नृप कौ रुख जान्यौ,
ह्वै निरास बलि पास आय यहि भाँति बखान्यौ ॥

(२२)

"महाराज ! जे रहे आजु लौं सत्रु तुम्हारे,
लिये लेत ते हाय सकल अधिकार हमारे।
लैहैं बलहि बढ़ाय उग्र निज रूप दिखैहैं,
हैं सुरपति के मीत अवसि धोखो मिलि दैहैं ॥"

(२३)

तब बलि तिनहिं प्रबोधि आपु गुरु मन्दिर आयो,
अरु पद पंकज परसि सकल कहि हाल सुनायो।
सो सुनि कछुक बिचारि सुक्र इमि गिरा उचारी,
"दैत्यवंस कौ होन चहत अनहित अब भारी ॥

(२४)

है बस एक उपाय, भूप बन कौ मग लेंहीं,
राजपाट कौ भार सौंपि तुम्हरे कर देहीं।
अबहूँ बिगरचौ नाहिं ईस जौ होइ सहाई,
करि नृप नय अवलम्ब काज सब लेबु बनाई ॥"

(२५)

तौ लगि सैनिक सुभट आय गुरुद्वार पुकारे,
"महाराज ! हम लोग आजु सब जात निकारे ।"
तिन्ह सबहिन समुझाय सुक्र बलि कहँ सँग लीन्ह्यौ,
अरु अतिसै मन माखि गमन नृप मन्दिर कीन्ह्यौ ॥

(२६)

गुरु आवन गृह सुनत विरोचन अति सकुचाने,
पै सब त्यागि दुराव चरन परि के सनमाने ।
बहुरि कमलकर जोरि कनक-कस्यप-कुल-केतू,
पूछ्यो गुरु सो "नाथ ! आजु आयो केहि हेतू ?

(२७)

जब सेवक के सदन चरन गुरु के चलि आवत,
सकल अमंगल मूल दरत दुख दुसह नसावत ।
पै लहि जो कछु नाथ ? रावरो आयसु होई,
सुमन माल सम सीस धारि करिहैं हम सोई ।।"

(२८)

कह गुरु "सुत ! तुम हाय कहा कछु ध्यान न दीन्ह्यौ,
असुर समूह निकारि राज निर्बल करि लीन्ह्यौ ।
अरु सुर सैनिक राखि आपनो काज बिगार्यौ,
लै अपने ही हाथ परसु निज पायनि मार्यौ ॥

(२९)

अबहूँ बिगर्यौ नाहिं पूत कौ ब्याह रचावौ,
अरु दै दै उपहार सुरनि निज धाम पठावौ ।
बहुरि निमंत्रन भेजि अखिल असुरनि बुलवावौ,
माँगौ तिन सौं छमा, आपने बलहिं दृढ़ावौ ॥

(३०)

सुनि इमि गुरु मुख बैन भूप पायनि सिर डारयौ,
अरु मन अमित गलानि मानि आपुहि धिरकारयौ।
बहुरि जुगुल कर जोरि कह्यौ "हौं रह्यौ भुलान्यौ,
निज हित अनहित हाय नाथ ! अबलौं नहिं जान्यौ ॥"

(३१)

लखि तेहि अमित विनीत हरषि गुरु आसिष दीन्ह्यौ,
अरु बलि कौ लै साथ गमन निज भवनहिं कीन्ह्यौ।
होतहि प्रात महीप विज्ञ दैवज्ञ बुलाये,
बलि विवाह हित मुदित लगन तिन सौं सुधवाये ॥

(३२)

सचिवनि बहुरि निदेसि निमंत्रन सबन पठायो,
सुरपति, असुरनि, जिन्हैं प्रथम अपमानि लुटायो।
जथासमै तिन आय विरोचन नृपहि जुहारे,
नय परिवर्तन निरखि आपु सुरपति हिय हारे ॥

(३३)

हिम भूधर के अंक रही नगरी एक प्यारी,
वलिबिंध्या तहँ रही भूप की राजकुमारी।
तेहि सँग नृप निज सुतहिं ब्याहि अति आनँद पाई,
लौटयौ पुनि निज राज सकल अभिलाष पुराई ॥

(३४)

पुनि सब साजि समाज राज बलिराजहि दीन्ह्यौ,
अरु जग सौं मुख मोरि आपु दर्भासन लीन्ह्यौ।
दियो अमित उपहार प्रथम जिन सुरन बुलायौ,
अरु अमरावति तिनहिं सबनि हरि साथ पठायौ ॥

(३५)

पुनि असुरनि सनमानि तिन्हैं निज निज पद राख्यौ,
मानि आपनी भूल अमित मृदु बैननि भाख्यौ ।
सब विधि तिनहिं सँतोषि त्यागि जग के जंजालहिं,
अवराधन नृप लगे आपु निसदिन ससिभालहिं ॥

(३६)

इत नृप बनि बलिराज राज कौ बलहि दृढ़ायौ,
प्रजनि दियो सन्तोष कोष की आय बढ़ायौ ।
बहुरि जनक सौं जानि सकल सुरपति सठताई,
कबहुँ न उनसौं कियो आपु जिय खोलि मिताई ॥

(३७)

प्रजानुरंजन ओर ध्यान नरनायक दीन्ह्यो,
नित नव सुघर सुधार आपु सासन महँ कीन्ह्यो ।
खोले गुरुकुल अमित, सबनि विद्या पढ़वाई,
सैनिक सिच्छा काज व्यवस्था सकल कराई ॥

(३८)

लरत कुन्त सौं वीर, कतहुँ कोउ परसु प्रहारत,
गदायुद्ध कोउ सिखत, खड्ग के हाथ निकारत ।
मुगदर, पट्टिस लिये कोउ प्रतिबल ललकारत,
गज, रथ, बाजिन बैठि कोउ निज धनु टंकारत ॥

(३९)

कियो स्वास्थ्य-रक्षा हित भूपति अमित उपाई,
दीन्ह्यौं नगरनि माहिँ औषधालय खुलवाई ।
ज्वर संक्रामक रोग कबहुँ नाहिन बढ़ि आवत,
पय-पोषित-सिसु होन मृत्यु कौ ग्रास न पावत ॥

(४०)

कृषि विभाग को भूप अमित सम्पन्न बनायौ,
अरु सहकारी कोष खोलि उन्नति करवायौ ।
बहुरि सिँचाई हेतु किती नहरैं बनवाईं,
गहरे गहरे कूप बावली हू खनवाईं ॥

(४१)

नगर माहिँ उद्यान रुचिर भूपति लगवायो,
गगन विचुम्बित सार्वजनिक गृह तहँ बनवायो ।
लागे अमित फुहार, जुही की रौंस सँवारी,
दैत्य बन्धु की मूर्त्ति बनी अतिसै छवि धारी ॥

(४२)

प्रबल अदेवनि सन राजसीमा पै राखी,
खबरि देत चर नितहि राज उन्नति अभिलाखी ।
करत सदा ही न्याय सबनि सनमान दिखावत,
एक ईस को डरत समुद ससिसेखर ध्यावत ॥

(४३)

यहि विधि नृप करि राज्य अनेकन वर्ष बिताये,
एकऊनसत बाजिमेध मख आपु कराये ।
भयौ न तौहूँ कोष दैत्य नरपति कौ खाली,
यह लखि ईर्षा करन लगे सब देव कुचाली ॥

(४४)

केतिक वर्ष बिताय जोग मंगलमय आयो,
दैत्यबंस को मौलि मुकुट रानी सुत जायो ।
ताके लच्छन देखि कह्यौ जोतिषिन बिचारी,
ह्वैहै राजकुमार सकल वसुधा अधिकारी ॥

(४५)

ससि सम बाढ़न लग्यो बाल नहिं बार लगायो,
सस्त्र सास्त्र कौ सकल ज्ञान तेहि भूप करायो ।
राजनीति पढ़ि, सिख्यौ आपु सेना संचालन,
जान्यौ सासन रीति और परिजन प्रति-पालन ॥

(४६)

जान्यौ अस्त्र प्रयोग मंत्र, अरु तासु निवारन,
व्यूह बनावन सिख्यौ, और घुसि ताहि बिदारन ।
इमि सब बिधि ह्वै निपुन मानि पितु को अनुसासन,
सम्भु सैल पै गयो करन सिव कौ अवराधन ॥

(४७)

तहँ रहि करि तप उग्र आपु त्रिपुरारि रिझायौ,
मनवांछित वर सहित दिव्य अस्त्रनि बहु पायौ ।
खेलत षटमुख साथ रहत अति मोद मढ़ाई,
याते दोहुन माहि गई ह्वै अमित मिताई ॥

(४८)

यहि विधि सिवहि सँतोषि रुचिर तिनसौ वर पायो,
अरु सिव सैल विहाय बान अपने गृह आयो ।
करत नगर कौ राज पाय बलि को अनुसासन,
नाम मात्र को भूप रहे बैठे सिंहासन ॥

(४९)

जथा समै बलिराज बान को ब्याह रचायौ,
अरु या विधि सौं रानि हीय-अभिलाष पुजायौ ।
बन्दिन दीन्ह्यौं छोरि, दान संस्थनि कहँ दीन्ह्यौ,
पुरजन परिजन सुजन सकल परितोषित कीन्ह्यौ ॥

(५०)

इमि सुत ब्याह समापि भूप निज कीर्ति बढ़ाई,
दैत्यबंस की ध्वजा स्वर्ग लौं दई चढाई ।
नित नव-मंगल होत भूप के सासन माहीं,
पै उन्नति अवलोकि परत कल देवनि नाहीं ॥

(५१)

ऐसो अदेवनि कौ उतकर्ष,
न देवनि के हिये नैसुक भायो ।
औ मिलि के तिनके सद भाँति,
विनास के हेतु मतो ठहरायो ।
त्यौ दुरनीति की चालनि कौ,
निसिनाथ बृहस्पति कौ समुझायो ।
या विधि बंचन कौ बलि कौ,
तिन्हैं दैत्यनरेस के धाम पठायो ॥

तृतीय सर्ग

हरिगीतिका

(१)

निरखि दैतनि कौ विभव मन माहिं अति अनखायकै,
मिलि अखिल देव समूह इक षड्यंत्र रच्यौ बनाइकै ।
सब गये बलि नृप की सभा महँ वैर भाव भुलायकै,
अरु, करन लागे मुदित मन प्रस्ताव प्रीति दृढ़ायकै ॥

(२)

ससि कह्यौ "हम सब एक ही कुलमान्य की संतान हैं,
पै तुच्छ बातनि में परस्पर बैर करत महान हैं ।
यहि विकट बंधु विरोध कौ नहिं कछु सुखद परिनाम है,
अब यहै दीसत सुर असुर कुल के विधाता वाम है ॥

(३)

अबलौं भयो सो भयौ वाको सोच जनु कछु कीजिए,
वैरानुबंध भुलाइ कै सहयोग को व्रत लीजिए ।
जग विजय को सम भाग आपुस माहिं समुद बटाइहैं,
मतभेद ह्वैहै जो कहूँ तेहि सान्त ह्वै निपटाइहैं ॥

(४)

यदि रह्यौ ऐसो हाल दानव कबहुँ सीस उठाइहैं,
निज भाग पावन हेतु वैऊ कठिन कलह मचाइहैं ।
अथवा हमारी निबलता सौं जबहिं लाभ उठाइहैं,
दल बाँधि कै अमरावती पै अवसि ही चढ़ि आइहैं ॥

(५)

अरु मानि लीजै सुरप उन सों जौ कहूँ लरि हारिहैं,
　　तौ तिनहिं प्रथम दबाय तुमकौ अवसि समर प्रचारिहैं।
संतति हमारी मूढ़ता पै तबहिं नृप पछिताइहैं,
　　निज अतुल बल को पतन लखि अँसुवा अमित बरसाइहैं ।।"

(६)

इमि भाषि ससि भौ मौन, सुरगुरु समुद बलि दिसि देखिकै,
　　कह "संधि कीजै कलह तजि, गति समय की अवरेखिकै ।
है संगठन सहयोग में ही सक्ति यह गुनि लीजिए,
　　स्वीकार याते सत्रु को प्रस्ताव भूपति कीजिए ।।"

(७)

पुनि लखि विरोचन ओर सुरगुरु कछुक मृदु मुसकायकै,
　　"कह संधि देहु कराय, अब निज सुवन को समुझायकै ।
है उभय कुल को कुसल यामै औ यहै नृप-नीति है,
　　जो करै हठ तेहि को दबावत यह बड़ेन की रीति है ।।

(८)

बिधि बिस्नु हर हू लखहु किन यहि बंस के प्रतिकूल हैं,
　　उन्नति अपार विलोकि उनके हिये बेधत सूल हैं ।
विसवासि पुनि छल साजि हरि ने दैत्य बंधुनि कौ हयो,
　　है सुरप के हिय दाह, याको अजहुँ नहिं बदलो लयो ।।

(९)

तुम दुऔ मिलि वंचक विधि यह पाठ देहु पढ़ाइ तौ,
　　यहि भाँति कोऊ तपधनहि वरदेन कौ नहिं जाइ तौ ।
इत ब्रह्म लोक उजारिकै पुनि विस्नु सौं पूँछौ सही,
　　बैकुण्ठ अधिपति देव की अब नीति रीति यहै रही ?

(१०)

इमि प्रबल अरिन दबाय पहले भूप बदलो लीजिए,
वर ब्रह्मलोक विकुण्ठ को मिलि दोउ सासन कीजिए ।
हरखाय भाँग धतूर को कैलास पै नित राजहीं,
हेरम्ब, षटमुख गौरिहू कौ ज्ञान कछु उनकौ नहीं ॥

(११)

बिधि बिस्नु के इमि पतन कौ जब जानि वै पैहैं कहीं,
तौ ह्वै अकेले रावरो कछु अहित करि सकिहैं नहीं ।
तब तिनहि बिबस बनाय मनमाने नितहि वर लीजियो,
यहि बिधि अखिल ब्रह्मांड पै दोउ मुदित सासन कीजियो ॥"

(१२)

इमि सुनत सुर गुरु के वचन कछु सुक्र मृदु मुसकायकै,
अरु कहन लागे बैन दैत्य नरेस कौ समुझायकै ।
"नृप ! सुनिय सत उपदेस इनको और फेरि विचारिए,
फल अफल याकौ सोचि पीछे कार्यक्रम निरधारिए ॥

(१३)

ये चहत बिधि हरि सम्भु सौं तव घोर बैर बँधायकै,
यहि भाँति दैत्यनि बंस कौ अवसेष अंस नसायकै ।
पुनि जोरि तिनसौं संधि ये ब्रह्मांड मैं निज जस भरैं,
अरु कुटिल नीति सिखाय तुम कहँ सक्र कौ कारज करैं ॥

(१४)

जब हयो हरि हठि दैत्यबंधुनि, करन अस्तुति ये गये,
नहिं लाज आई सत्रु के कर जोरि ये ठाढ़े भये ।
नृप बाल प्रह्लादहिं कछुक ये कपट चाल पढ़ायकै,
अरु आज लौं निज नीति के बल तुमहिं रहे दबायकै ॥

(१५)

जब ते भये बलिराज नायक हहरि हिय इनको गयो,
ये बढ़त प्रति-पद चन्द्र-सम हा दैव ! यह कैसो गयो ।
सुर बनत देवनि दास, दैत्यज होत जात स्वतंत्र हैं,
यहि लागि तुमरे नास हित इमि देत भूपति मंत्र हैं ।।

(१६)

आचार इनको सुनहु नृप ! ससि जज्ञ कीन्ह सजायकै,
न्यौत्यौ बृहस्पति को लियो पुनि तासु तियहि छिनायकै ।
तेहि करी निज घरिनी, थके आचार्य विनय सुनायकै,
नहिं नेकु मारे आपु हारे सकल देव मनायकै ।।

(१७)

ते चले हम कहँ आजु भूपति देन कौ उपदेस हैं,
पै निज कुटिल करतूति पै ये लजत लखहु न लेस हैं ।
एक तीय कौ यह तुच्छ झगरौ निपटि नहिं पायौ जहाँ,
तौ राजनैतिक विषय मैं ये न्याय कौ करिहैं कहाँ ।।"

(१८)

सुनि सुक्र के वर बैन बलि नृप तिनहिं सीस नवाइकै,
अरु कहन लाग्यो वचन निज गुरुवरहिं इमि समुझाइकै ।
"अभिलाष करि आये इतै, इनको निरास न कीजिए,
प्रस्ताव के अरधांस को स्वीकार ही करि लीजिए ।।

(१९)

हे नाथ ! याते नित्य कौ कुल कलह तौ मिटि जाइहै,
अरु रहत रन हित सजी सैनहुँ चैन सौ कछु पाइहै ।
फिरि बंधु मिलिहैं बंधुसौं बिसरायकै अरिभाव को,
ह्वै बिमल मानस, राखिहैं नहिं कतहुँ कोउ दुराव कौ ।।"

(२०)

इमि बैन सुनि बलिराज के जलराज गुरु रुख पायकै,
यौं कहन लागे दैत्यनृप सौं वचन मृदु मुसकायकै ।
"है रहत कमला सिन्धु मैं अरु रत्न रासि सबै यहीं,
पै मथि अगाध समुद्र कौ कोउ तेहि निकारै है नहीं ॥

(२१)

यातै हमारी मानि अब नृप सिन्धु को मथि डारिए,
गहि बाँह तेहि पितु गेह सो सह रत्न रासि निकारिए ।
पुनि लाभ को सम भाग हम सब बाँटिहैं सुख पायकै,
अरु मेलकै रहिहैं सदा कुल कलह कौ बिसरायकै ॥"

(२२)

सुनि वरुन कौ प्रस्ताव कछुक विचारि मंत्र दृढ़ायकै,
स्वीकार कीन्ह्यौ ताहि बलि हिय अमित मोद मढ़ायकै ।
जलनाथ ससि अरु अपर सुरगन हर्ष अति पावत भये,
अरु नाय बलि पद भाल सब मन मुदित सुरपुर कौ गये ॥

(२३)

सुरराज पूछ्यो तबहिं गुरु सौं "काज करि आये वहाँ,"
तिन कह्यो "सब बनि परी सुक्र अनर्थ पै कीन्ह्यो महाँ ।
तब सिन्धु मन्थन हेतु साध्यौ बहुरि बलिहि घुमायकै,
बहुरत्न कमला आदि कौ तेहि अमित लोभ दिखायकै ॥

(२४)

यह सुक्र जौ लौं जियत तौ लौं चलन चाल न पाइहै,
खल अवसि कुटिल कुमंत्र कौ सब भेद नृपहि बताइहै ।
नहिं लोभ लेसहु करत यह तौ हाँथ कैसे आइहै,
अरु दैत्यनृप सौं कहौ कैसो विपुल बैर बढ़ाइहै ॥

(२५)

'यह सुक्र जो पै दैत्य नृप सौं कतहु बैर बढ़ावही,
तौ छनक मैं गहि चाप, कै दै साप तिनहिं नसावही।
इमि साप-हत-बल-दैत्य-गन-कौ जबहिं हम लखि पावहीं,
सजि सैन आयुध धारि तिनहिं समूल भूप नसावहीं ।।

(२६)

निसिराज बोल्यो "अब सबै मिलि आपु मंत्र दृढ़ाइए,
यहि सिन्धु-मंथन माँहि इनको अमित हानि सहाइए।
बढ़ि विपुल बल सों वरुन तिनकों धार माँहि बहावहीं,
कै वह्नि वाड़व निकरि इनकौ जारि छार बनावहीं ।।

(२७)

'उत गुरुहिं दैत्य-नरेस आपु मनाय आयसु पाइकै,
निज सैन लैकै सिन्धु के तट रच्यो सिविर बनाइकै।
इति सुरप लै दिकपालगन अरु नागराज बुलायकै,
तेहिं सजग कीन्ह्यौ निज कुटिल प्रस्ताव को समुझायकै ।।

(२८)

तब विविधि औषधि लेन दोऊ गहन कानन कौ गये,
तँह दैत्य गन सविशेष भोजन विषम भुजगन के भये।
सुर किते नाहर रूप धरि पुनि तिनहिं औचक ही हये,
पै अमित हानि उठाय कै तिन लाय सब औषधि दये।

(२९)

सुर असुरगन मिलि तबहिं मंथर अचल लावन कौ गये,
पचि मरे पै नहिं अचल डोल्यौ दैत्य बल कुंठित भये।
लखि तबहिं सबहिं निरास श्रीहरि वाम बाहु लगायकै,
गहि ताहि बिनहिं प्रयास डारयौ सिन्धु के मधि लायकै ।।

(३०)

सुर कहत कमला रहत यामैं सुधा कौ आवास है,
बहु रत्न मनि मानिक तथा मुकता जलधि के पास हैं।
जो बहुत बढ़ि बतरात वाकी बात कौ न प्रमानिए,
कछु छीहरो रीतो तथा अति तुच्छ वाको जानिए ।।

(३१)

यह करत नाद अपार पै गम्भीरता छोरै नहीं,
बहु उठत झंझावात पै मुख सान्ति सौं मोरै नहीं।
लै सलिल खारो सपदि घन सुस्वादु ताहि बनावहीं,
अरु लोक के कल्यान-हित तेहि अवनि पै बरसावहीं ।।

(३२)

है सीत याको नीर, यद्यपि धरत यह बड़वागि है,
हरि नींद यामैं लेत पै यह रहत निसि दिन जागि है।
नहिं घटत ग्रीषम माहिं अरु है बढ़त पावस मैं नहीं,
सच कहत सज्जन कबहुँ निज मरजाद को छोरैं नहीं ।।

(३३)

यह दूरि करत पियास रवि की, पोत कौ स्वागत करै,
हरषाय तिनके भारहू को बच्छ पै अपने धरै।
नायक किती सरिता तियनि कौ मानहू सबकौ करै,
नहिं होन देत निरास काहुहिं सकल दुख तिनके हरै ।।

(३४)

नृप चक्रवर्ति समान बहु विस्तार याकौ राज है,
अरु रहत पाय स्वराज्य यामै सकल जन्तु समाज है ।
अधिकार के हित युद्ध यामैं हैं नहीं कतहूँ ठने,
सच कहत कबहुँ स्वराज्य मैं नहिं जात हैं विप्लव सुने ।।

(३५)

वह अनाधार अगाध अम्बुधि मैं लग्यो बूड़न जबै,
धरि प्रबल कच्छप रूप हरि निज पीठ पै राख्यौ तबै ।
पुनि करि चतुर्भुज बपुष वापै आपु बैठे जायकै,
यहि भाँति दीन्ह्यौं सून्य नभ मैं रुचिर खम्भ बनायकै ।।

(३६)

अभिलाष हरि कौ देखि तब हरि वासुकीहि बुलायकै,
कह "रज्जु तुम बनि जाहु सब मिलि मथैं सागर आयकै ।"
सिर धारि सुरप अदेस मंदर माहिं सो लिपटत भयो,
अमरेस सुरयुत आय वाकौ प्रथम ही आनन गह्यौ ।।

(३७)

यहि चाल कौ समझे बिना सब दैत्य अमित रिसायकै,
अहि सीस गहिबे काज तिनसौं लगे झगरन आयकै ।
"ह्वै विमल वंस विभूति निज कुल गौरवहिं ख्वैहैं नहीं,
यहि नाग को अधमांग काहू भाँति हू छ्वैहैं नहीं ।।"

(३८)

लखि सफल अपनी चाल तिनकी बुद्धि पै मुसकायकै,
सुर त्यागि वासुकि-सिर लगे सब पुच्छ की दिसि जायकै ।
हरि प्रथम बल करि खैंचि निज दिसि बहुरि बलि खैंचत भये,
इमि पाँच बार फिराय मंदर दोउ निज सिविरनि गये ।।

(३९)

सुर असुर दोउ मिलि मथन लागे अमित रोष बढ़ायकै,
सुनि करन जुर कारन रवहिं जलजन्तु चले परायकै ।
लहि विकट भूधर की चपेटनि भगत ससि घबरायकै,
उछरत तिमिंगिल नक्र कौहूँ अमित चोटनि खायकै ।।

(४०)

उठि विपुल तुंग तरंग नापन गगन कहँ मानौ चली,
कै परसि हरि पदकंज कौ यह करत मृदु बिनती भली।
है सम्पदा हू आपदा याको कठिन रच्छन महाँ,
परि खलन के पाले कहौ अब याहि लै जावैं कहाँ॥

(४१)

निज काज साधन हेतु खलगन गनत कष्ट न और कौ,
नहिं आपदा पै द्रवत पर की देत तिनहिं न ठौर कौ।
ये लै अमित धन रासि, बैभव विपुल निज विसतार हीं,
पै दीनजन दुख दरन के हित आँसु एक न डारहीं॥

(४२)

कोसत वरुन निज बुद्धि कौ जिन मंत्र यह तिनको दियो,
पर-हानि के हित लागि अपनो ही अमित अनहित कियो।
जो खनत औरन के निधन हित कूप मग मैं जायकै,
ह्वै सावधान तथापि तेही गिरत वामैं आयकै॥

(४३)

इत सुमिरि सुरप अदेस वासुकि अमित रोष बढ़ायकै,
विष ज्वाल लाग्यो तजन दैतन दिसि हिये अनखायकै।
जाते अनेकन दैत्यगन जरि छार तेहि ठौरहिं भये,
अरु सके जे विष झेलि ते कारे कलूटे ह्वै गये॥

(४४)

उत बाड़वागि प्रकोपि तावन तिनहिं तापन सौं लगी,
स्रम हरन सीतल वात इत हिम किरनि निकरनि सौं जगी।
उत तपत अहिम-मरीचि-माली ज्वाल जनु बरसायकै,
इत करत छाया जात घन गन सुमन जूह गिरायकै॥

(४५)

सहि अमित कष्टन दैत्यगन नहिं वासुकी आनन तज्यो,
अरु धीरता को देखि तिनकी हीय निज सुरगन लज्यो।
रहि सिविरि मैं, पढ़ि मंत्र आहुति अग्नि मैं डारत रहे,
यहि भाँति तिनकी बिघ्न बाधा सुक्र सब टारत रहे ॥

(४६)

उत विपुल भूधर की चपेटनि भयौ इत कौतुक नयो,
बहु तप्त तैल समान सागर कौ सलिल सब ह्वै गयो।
मरि गये बहु जल-जन्तु जिनके सव बहन पय पै लगे,
पुनि जरन लागें ज्वाल जनु अम्बोधि के ऊपर जगे ॥

(४७)

सुर दैत्य मुरछित परे मंदर खम्भ लौं ठाढ़्यो रह्यो,
लखि विषम हालाहलहि तब हरि बिहँसि इमि हर सौं कह्यो।
यह आपुकौ है भाग याते याहि प्रथम पचाइए,
सब जरे ज्वालनि जात इनकौ बेगि नाथ! बचाइये ॥

(४८)

सुनि वचन हरि के सम्भु हालाहलहि निज कर मैं लियो,
अरु सुमिरि प्रभु पदकंज वाकौ पान हर्षित हिय कियो।
"जै जैति जैति कृपालु संकर" असुर देवनि मिलि कह्यो,
पुनि सपदि सागर मथन हित तिन आय वासुकि कौ गह्यो ॥

(४९)

पुनि कछु चपेटनि खाय ससि घबराय हीय डरायकै,
निज प्रान रच्छन काज जलपै आपु बैठ्यौ आयकै।
लखि कह्यौ संकर याहि हम निज सीस हरखि बसायहैं,
यहि भाँति सौं विष ज्वाल मालनि चैन तौ कछु पायहैं ॥

(५०)

पुनि कल्पतरु, गज, वाजि, रम्भा, धेनु, धनु, ताते कढ़े,
सुरनाथ तिनकहँ लेन हित आनन्द सौं आगे बढ़े।
हरि लियौ कौस्तुभ, संख; वारुनि कढ़न सागर सौं लगी,
तब ताहि लैबे काज कछु अभिलाष दैतनि उर जगी ॥

(५१)

पै बरजि तिन कहँ कहत बलि हम लेइहैं याकौ नहीं,
पर तियनि पै कहुँ दैत्य-बंस-नरेस दीठि न डारहीं।
लै वारुनी वर कलस देवनि ओर बैठी जायकै,
अति रूप रासि निहारि ताकौ रहे सुर मुसकायकै ॥

(५२)

तब कढ़ी कमला जासु के वर रूप कौ अवरेखिकै,
सुर असुर दोऊ चकित से रहि गये इकटक लेखिकै।
कह "सिन्धु देव अदेवगन महँ याहि जो मन भाइहै,
प्रातहि स्वयंवर माँहि तेहि जयमाल या पहिराइहै" ॥

(५३)

लै बारुनी अरु इन्दिरा को गयौ सो निज गेह को,
पुनि मथन लागे सिन्धु दोउ बिसराय के निज देह को।
कहुँ बिफल श्रम नहिं होत है यह बात हीय दृढ़ायकै,
अरु अधिक फल की आस पै विसवास अमित वढ़ायकै ॥

(५४)

पानि लै पियूष घट तब आपु धन्वन्तरि कढ़े,
सुर ताहि लैबे काज प्रमुदित जबहिं वाकी दिसि बढ़े।
तब करकि कै बलि कह्यौ 'वाही ठौर पै ठाढ़े रहौ,
जनि लखौ याकी ओर तुम पथ आपने गृह को गहौ ॥

(५५)

यों बलि आयसु पाय पियूष कौ,
　　दैत्य धनन्तरि सौं घट छीन्यौं ।
ठाढ़े रहे पुतरी सम देव,
　　न साहस कोऊ विरोध कौ कीन्ह्यौं ।
देखि कै ताकौ प्रमोद भरे,
　　हरषाय कै सैनिक के कर दीन्ह्यौं
औ कछु वीरन के सँग भूपति,
　　आपने गेह को मारग लीन्ह्यौं ॥

चतुर्थ सर्ग

सवैया

(१)

वा निसि सिन्धु निदेस सौं एक,
प्रवाल को दीप तहाँ कढ़ि आयो ।
हेम को हाल विसाल-दिवार,
जराय जरयो अतिसै मन भायो ।
एक ही दर्पन की छति जासु,
गहै प्रतिबिंब महा छवि छायो ।
ता मधि मंचनि की अवली,
गजदन्तमयी धरि साज सजायो ॥

(२)

दीठि जहाँ लगि जाति चली,
तहँ सुन्दर छाय रही हरियारी ।
बेलिन के तने चारु बितान,
खिली सुमनावलि हू अति प्यारी ।
रौसें गुलाबनि की किती चारु,
रहीं चहुँ ओर सुगंधि बगारी ।
त्यौं ही सरोजनि के मकरन्द सौं,
सोन लौं सोहि रह्यो सर बारी ॥

(३)

मञ्जरी मंडित चारु रसाल की,
डारनि पै चढ़ी क्वैलिया गावत।
सीतल मन्द सुगन्ध समीर,
जहाँ मन को स्रम दूरि भगावत।
त्यों खगवृन्द को मंजु अलाप,
सुधारस स्रौननि में मनौ नावत।
हेम कुरंग चहूँ दिसि घूमि,
उद्यान की सोभा अपार बढ़ावत॥

(४)

आजु है सिन्धुसुता को स्वयंवर,
औ सुरवृन्दनि हू की अवाई।
या लगि मानौ महा मुद मानि,
दियो प्रकृती सुषमा बगराई।
ता समै मंचनि की अवलीनि पै,
ऐसी अनूप छटा कछु छाई।
मानो सुधाधर ने हरखाय,
दई वसुधा पै सुधा बरसाई॥

(५)

जानि स्वयंवर कौ समै आपु,
मयंक लै सेवक को गन आयो।
स्वागत ही के लिए सबके,
तँह मंजुल पाँवड़े लै बिछवायो।
पान सुगधि औ एला लवंग,
गुलाब को जीवन हूँ मँगवायो।
औ तिनको सुरवृन्दनि के,
सतकारनि को करिबो समुझायो॥

(६)

तौ लगि आवन लागे विमान,
तहाँ असुरासुरवृन्दनि लै लै ।
त्यौं परिचारकहू कर जोरि,
लगे तिन्हैं मंजु बतावन गैलै ।
स्वागत द्वार पै ठाढ़ो ससी,
गहि के कर मंच लौ जात लै छैलै ।
पाँव धरा पै जहाँई धरै,
तहाँ चाँदनी चारु, चहूँ दिसि फैलै ।।

(७)

सम्भु विधाता, तथा हरि, सक्र,
जलेस, धनाधिप, नैरित, आये ।
वायुसखा, जमराज, औ पौन,
बृहस्पति, मंगल, बुद्ध सुहाये ।
त्यौं सनि सुक्र, तथा बलि, वासुकी,
वान, कुमार महा छवि छाये ।
किन्नर, रच्छ, विद्याधर, यच्छ,
स्वयंवर देखन के हित धाये ।।

(८)

हैं जग मैं किते दीन औ हीन,
पै जच्छ रहैं निज वित्त दुराये ।
रूप मनोहरता मैं विद्याधर,
छाँह हू वाकी छुवै नहिं पाये ।
गंध्रब हू मैं नहीं स्वर गन्धि,
यहू गुनि कै हिय माहिं लजाये ।
सिन्धु-सुता के स्वयंवर माहिं,
न आनन को ते दिखावन आये ।।

(९)

वान को देखत ही सुरराज ने,
ताहि लियो निज अंक बिठारी ।
आँगुरी सौं तिन दै कै सँकेत,
कुमारहिं लीन्ह्यो तहाँ सनकारी ।
कै परिहास कह्यौ मुसकाय,
यहै अब तौ मति होत हमारी ।
सिन्धु-सुता सौं कहौ इनके, गरे,
क्यों जयमाल न देत है डारी ।।

(१०)

आय पिता ढिंग बैठे दोऊ,
सुरनाथ के बैननि ही सों लजाने ।
दीन्ह्यों लाइची पान सबै,
औ सुगंधिन सींचि हिये हरखाने ।
त्यौंही सुरासुरवृन्दनि के,
ससि ने सतकार किये मनमाने ।
तौ लगि रत्न जरी सिविका,
तहाँ लावत वाहक आपु लखाने ।।

(११)

धारि दियो सिविका तिन लाय कै,
तासौं कढ़ी जलरासि दुलारी।
भूषन वेस बनाय भले,
तहाँ आय गईं सबै देवकुमारी।
लीन्हे मयंकमुखी कर माल,
मराल की चाल लजाय पधारी ।
लागी करावन देवन कौ,
परिचै वर वीन कौ धारनवारी ।।

(१२)

ठाढ़ी लजात तहाँ कमला,
न स्वयंवर भौन सकी पगुधारी।
भूषन औ सुषमा छविभारन,
जाति है मानौ दबी सुकुमारी।
मानस कौ घन हंस कुमारि कौ,
लै चलैं, तैसै चलीं सखी सारी।
लोचन देवन के उरभे मग,
कैसे धरै पग सिन्धु दुलारी॥

(१३)

देवन की दिसि सारदा देखि,
गँभीर गिरा सन बैन उचारौ।
"सिन्धुसुता यह आपु लजात,
न या दिसि दीठि लगाय निहारौ।
त्यौं हरि औ चतुरानन सम्भु कौ,
धीरज कौ जो छोरावन वारौ।
धारे प्रसून नराचनि काम,
सबै मुद-मंगल साजै तुम्हारौ॥"

(१४)

यौं कहि सो कमला को लिवाय कै,
वासुकी के समुहे भई ठाढ़ी।
त्यौं सुमिरे तिनके गुन ग्राम,
सखीनि पै आय परी अति गाढ़ी।
रोम खड़े, तनु कम्प जग्यो,
अरु भीतिहु सिन्धुसुता हिय बाढ़ी।
या विधि ताहि विहाल लखे,
तबै सारदा यौं बतियाँ मुख काढ़ी॥

(१५)

"ये सबै नागन के अधिराज हैं,
सेय महेस को धन्य कहाये।
धारत हैं सिर दिव्य मनीन,
सबै विधि संकर के मन भाये।
कंकन होत कबौं करके,
गुन मानि पिनाक पै जात चढ़ाये।
औ इनही सौं कबौं कसि कै,
सिर के जटा जूट हैं जात बँधाये॥

(१६)

गौरि अलिंगन सौं कुच कुंकुम,
लागि परचो पट सो अरुनारो।
रातो भयो तेहि के परसे,
उपवीत लौ सम्भु गरे यहि धारो।
गौर सरीर है पै यहि को,
लखि जाहि लजात कपूर औ पारो।
सो यह आय स्वयंवर में,
अभिलाषी भयौ सुनौ आजु तुम्हारो॥

(१७)

सम्भु के सीस सौं बाल मयंक,
पियूष कौ एक ही जीभ निकारी।
दूसरी त्यौं रसना कौ बढ़ाय,
गहै अधरा को सुधा जहँ धारी।
एक ही साथ दुहून कौ चाखि कै,
कामै धरचौ विधि स्वाद सँभारी।
सो झगरो निपटाइबै कौ,
बस वासुकी एकै भयौ अधिकारी॥

(१८)

जानत हैं सिगरे जग मैं,
विष होत भुजंगम दाँत मैं धारो ।
पै अधराधर कौ छत कै,
सो बिगारि सकै कछुहू न तुम्हारो ।
लै कै पियूष कौ साज सबै,
चतुरानन ने निज हाथ सँवारो ।
या लगि हीय मैं नैसुक संक,
करौ जनि मानि कै बैन हमारो ।।"

(१९)

पै लहि सिन्धु-सुता को सँकेत,
लै भारती ताहि चली कछु आगे ।
लाखनि लौं अभिलाखनि धारि,
मनोभव ताहि निहारन लागे ।
देख्यौ जबै कमला दृग फेरि कै,
भाग मनोज महीप के जागे ।
ताको विसेष लखे अनुरागहिं,
सारदा बैन कहे रस पागे ।।

(२०)

"है यह इन्द्र कौ आयुध मंजु,
औ लावनिता कौ अनूप अगार है ।
त्यौं हरि संकर औ विधि के,
वृत को यह आपु डिगावनहार है ।
धारै प्रसून नराचनि पै,
जग कौन सहै यहि वीर की मार है ।
कीजिए याहि कृतारथ तौ,
रति सी वर भामिनी को भरतार है ।।"

(२१)

"ये हैं कुवेर महेस के बन्धु,
औ देवनि कोष के हैं अधिकारी ।
किन्नर यच्छ विद्याधर गंध्रब्र,
बीन लै कीरति गैहैं तुम्हारी ।
कीजै जथारुचि भोगनि कौ,
औ बिभूषिए पुष्पविमान सवारी ।
कंठ मैं याके मयंकमुखी,
अब दीजै स्वयंवर माल कौ डारी ।।"

(२२)

देखि मयंक-स्वसा कौ बिराग,
तिन्हैं हुतवाहन के ढिग लाई ।
बोली लखौ "तिहुँकाल तिहूँपुर,
है इनहीं की सदा प्रभुताई ।
खात सबै कछु पै इनके बिनु
है कहूँ जज्ञ न जात रचाई ।
लोक पुनीत बनावन मैं,
इनकी नहीं कोऊ करै समताई ।।"

(२३)

"लोक प्रचेता कहैं इनको,
दिसि वारुनी के ये भये अधिकारी ।
त्यों ही तुम्हारे पिता इनके,
ह्वै अधीन बड़ाई लही इती भारी ।
पास है पास तऊ भ्रम होत,
उन्हैं लखि कै कवरीहि तुम्हारी ।
है ही जलेस भरोसे सदा,
वसुधा कौ सोहाग औ सम्पति सारी ।।"

(२७)

"ये हरनाकुस-बंस के रत्न,
　　अदेवनि के अधिराज कहाये ।
धारैं महाबल ये महाबाहु,
　　अबै इन सागर कौ मथवाये ।
दान मैं त्यों सुर-पादप कौ,
　　अरु रूप मैं कोटि मनोज लजाये ।
ये अपने सुत साथ इतै,
　　तुमरो हैं स्वयंवर देखन आये ॥"

(२८)

सिन्धुजा के मन आई नहीं,
　　बलि हू तेहि ओर न नेकु निहारो ।
सो गुनि भारती ने हिय माहिं,
　　अचंभित ह्वै कछू आप बिचारो ।
लै गई ताहि तहाँ जहँ बैठो,
　　गिरीनि कौ पंख बिदारनवारो ।
औ तेहि की दिसि देखि कछू,
　　मुसकाय गिरा इमि बैन उचारो ॥

(२९)

"कस्यप-बंस की हैं ये बिभूति,
　　किये सत जज्ञ औ इन्द्र कहाये ।
देवनि के हैं यही अधिराज,
　　रहैं अमरावती मैं छवि छाये ।
त्यौं रन मैं लरि कै किती बार,
　　अदेवनि की चमू चै बिचलाये ।
हैं ये कलानि के प्रेमी बड़े,
　　औ किती प्रमदानि के भाग जगाये ॥

(३०)

देखियौ नृत्य के भेदनि कौ,
अरु तान तरंगनि कौ रस लीजियौ ।
औ कबौ नन्दन कानन मैं,
इनके संग मंजु बिहारनि कीजियो ।
ठानियो रारि पुलोमजा सौं जनि,
औ अदिती कौ सँतोषहि दीजियो ।
पाय सुरेस सौं नायकै आपु,
सबै सुख जीवन के उत कीजियो॥"

(३१)

आगे बढ़ी जबै सिन्धु-सुता,
चलि वानी गई जहाँ बैठे पिनाकी ।
रोकि तिन्हें औ कछू मुसकाय कै,
भारती भौहँ भ्रमाय कै बाँकी ।
बोली "सुनौ कमला! जग मैं,
समता न करै को दान मैं याकी ।
औ गुन औगुन याके दुऔ,
मति मेरी विचारि विचारि कै थाकी ॥

(३२)

जाचकै देत हैं बिस्व बिभौ,
अपने तन पै गज-खाल सँवारत ।
जोगिन मैं सब सो हैं बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग मैं धारत ।
लीन्हें त्रिसूल रहैं कर मैं,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत ।
जारि ही देत सबै जग कौ,
जबै तीजो बिलोचन खोलि निहारत ॥

(३३)

भाँग धतूरनि खात कितौ,
पै अभै हैं हलाहल आपु पचैकै ।
हैं ही दिगम्बर, वाहन बैल,
मसान मैं डोलैं परेतनि लैकै ।
जोरिहैं दिव्य दुकूल जबै,
गज-खाल सौं गाँठि सखीगन दैकै ।
तौ परिहास करैंगी सबै,
अबला अनमेल बिबाह चितैकै ॥"

(३४)

व्यालनि की लखिकै फुसकार,
कछू कमला निज हीय डरानी ।
कीन्हों प्रनाम झुकाय सिरै,
चतुरानन के ढिग सो नियरानी ।
गावन कौं तिनके गनगाथ कौ,
कीन्हों सकोच कछू मन बानी ।
पै अपनो करतव्य विचारिकै,
बोली तिया सौं गिरा रससानी ॥

(३५)

"तीनहू लोक के ये करता,
अरु चारहू बेद बनावनवारे ।
दाढ़ी भई सन-सी सिगरी,
सिर पै कहूँ केस न दीसत कारे ।
नारद सौं इनके हैं सपूत,
तिहूँपुर ज्ञान सिखावनहारे ।
प्रेम की पास मैं बाँधन कौ,
तुम्हैं बूढ़े बबा इत हैं पगु धारे ॥

(३६)

मेलिकै कंठ मधूक की माल,
इन्हैं तुम आजु कृतारथ कीजियो ।
औसर मंगल गावन काज,
हमैं निज वृद्ध बिबाह में दीजियो ।
त्योंही बिनोद बिहारनिकौ,
इन सौं मिलिकै सिगरो रस लीजियो ।
पै गृह जीवन के सुख की,
तपसी घर में रहि साध न कीजियो ॥

(३७)

गुन-गौरव-गाथा सखी इनकी,
हम पै कहू भाँति न जाति कही ।
गईं बीति हमैं बरसैं कितनी,
इनके नहिं तर्क कौ पार लही ।
यह कैतव-नीति के पंडित हैं,
समता इनकी जग आप यही ।
पचिहारे किते तपसी तपकै,
बर देत हैं पै फल देत नहीं ॥"

(३८)

बन्दि तिन्हैं मन में सकुचायकै,
सिन्धुजा आगे कछू पगुधारी ।
कोटि मनोज लजावत जे,
पुरुषोत्तम पै निज दीठि कौ डारी ।
ठाढ़ी जकी-सी छिनैक रही,
कर्तव्यहु कौ न सकी निरधारी ।
या बिधि ताकी दसा अवलोकि,
कह्यौ इमि बीन को धारनवारी ॥

(३९)

"आगे चलौ सखी देखैं बरैं,
परिचै इनकौ हम कैसे करावैं।
मो अबला की कहा गति है,
सहसानन हू कहि पार न पावैं।
जानैं कहाँ इनको गुन-गौरव,
बेद हू नेति ही नेति बतावैं।
बंदत बूढ़े बबा इनके पग,
आपु महेसहु ध्यान लगावैं ॥"

(४०)

सिन्धुजा कौ हरि मैं अनुराग,
लग्यौ त्यौं अदेवनि हीय जरावन।
बार न लागी तिन्हैं तनिकौ,
पल मैं हरि कौ बपु लागे बनावन।
औ यहि भाँति सबै मिलिकै,
कमला की तबै मति लागे भ्रमावन।
ता समै भोरी न जानि सकी,
चहियै जयमाल किन्हैं पहिरावन ॥

(४१)

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक,
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन।
त्यौं भ्रम मैं परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहिं माल सकोचन।
वाकी लखे दयनीय दसाहि,
लगे अपने मन मैं बलि सोचन।
जानि रहस्य सँकेतहि सौं,
नृप आपु निवारि दियो तिन पोचन ॥

(४२)

देखि अचानक और की और,
सँकोचि मधूक की माल सँवारी।
त्यौं दुऔ कम्पित हाथ उठाय,
दियौ पुरुषोत्तम के गर डारी।
लाजन बोलि सकी न कछू,
कृस देह भई पै रोमंचित सारी।
औ सखियानि कै संग समोद,
बिनोद-भरी निज गेह सिधारी॥

(४३)

मेघनि के अवरोधनि सौं छुटि,
चन्द्र सों चन्द्रिका या मिली आई।
त्यौं बर देवनि की सरिता,
जलरासि सौं आपु मिली उमगाई।
यौं हरि सिन्धुसुता को सँजोग,
रहे सब देव अनन्द सौं गाई।
पै कछू अन्य अदेवनि के उर,
कुन्त समान गरचौ वह जाई॥

(४४)

वा निसि सागर-नन्दिनी सौं,
हरि जू को भयौ तहँ मंजु बिबाहू।
आय सुरासुर दोऊ अनन्द सौं,
लीन्ह्यौ सबै मिलि लोचन लाहू।
व्यापि रह्यौ तिहू लोक के वासिन-
हीतल माहि अमन्द उछाहू।
सिन्धु ने कीन्हे किते सतकारनि,
औ उपहार दियो सब काहू॥

(४५)

सिन्धु-सुता कौ बिबाह समापिकै,
देवन मंत्रना कीन्ह्यौं बिचारी ।
"लै गये कुम्भ सुधा कौ अदेव,
बनी सिगरी बिधि बात बिगारी ।
एक तौ ऐसे हुते बलधाम,
पियूष पिये अब डारिहैं मारी ।
जा दिन लैहैं हिये महँ ठानि,
तबै अमरावती दैहैं उजारी ।।"

(४६)

सक्र कह्यौ "तुम ब्यर्थ डरात हौ,
काम सबै यह काम सजैहै ।
जानत है कितने छलछंदनि,
जाय तहाँ निज जाल बिछैहै ।
ल्याइहै फाँसि तिन्हें निहचै,
तुमरे कर सौं जु पै पानहि पैहै ।
आयुध मेरो यहै है अमोघ,
प्रहार न याकौ वृथा कहूँ जैहै ।।"

(४७)

जा समै हे बलि सागर के गृह,
काम तबै तियरूप बनायो ।
कंचन कौ घट नीर भरो,
मुख मूँदौ, लिये बलि सैन मैं आयो ।
केतिक नेह-नहीं बतियानि सौ,
सैनिक कौ बिसवास दृढ़ायो ।
चेंटक-सौ पुनि बुद्धि भ्रमाय,
पियूष कौ कुम्भ उठाय लै आयो ।।

(४८)

या बिधि सौं घट ल्यायो मनोभव,
भेद न याकौ कछू बलि जान्यौ ।
बुद्धि सराहि कै वाकी सबै मिलि,
देवनि नै अतिसै सनमान्यौ ।
नेह कौ नातो निबाहन काज,
अदेवनि हू को बुलाइबो ठान्यौ ।
आय जुरे तहँ ते सिगरे,
जबही दियो औसर आय तुलान्यौ ।।

(४९)

सोचन लागे सबै मिलिकै सुर,
या समै कौनसी चाल चलैयै ।
जाते पियैं सबै देव पियूष,
इन्हैं पुनि वारुनी प्याय छकैयै ।
जो पै करै लगैं ये झगरो,
तब तौ इनसौं कहूँ पार न पैयै ।
या ते बिमोहन कौ इनकौ,
अब ही पुरुषोत्तम के गृह जैयै ।।

(५०)

देवन की बिनती सुनि कान,
तिया-वपु केसव आपु बनायो ।
सोरहौ साजि सिंगारनि कौ,
औ विभूषन अंगनि अंग सजायो ।
हेम के कुम्भ लिये कर मैं दोऊ,
बाल मराल की चाल लजायो ।
कीन्ह्यौ कटाच्छ भ्रमायकै भौंहनि,
दैतनि की दिसि दीठि चलायो ।।

(५१)

कंचन बेलि-सी या नवला,
दबी जात मनौ कुच कुम्भ के भारन।
त्यों सुखमा, पट, भूषन, दीठि कौ,
बोझ अपार बहै केहि कारन।
जानत हौं यहि मैन महीप,
जराय कै आपु कियो चहै छारन।
या लगि सो हम लोगनि सौं
मिलिकै निज प्राननि चाहै उधारन॥

(५२)

पन्नगी, मोर, मृगा, गज, केहरि,
संग रहैं अरि-भाव बिसारत।
पंकज, चन्द्र, चकोर, अमा,
औ मराल, मृनाल, मनौ हिय हारत।
बिम्ब अनार न खात कबौं सुक,
क्वैलिया अम्बनि काटि न डारत।
चम्पक औ अलि, राहु, ससी,
अरु तारहू ह्वैक पहारनि धारत॥

(५३)

पीरी, हरी, अरु स्यामल नील,
मनी अवदात तथा अरुनारी।
नूपुर मैं जरिकै मनौ सक्र-
सरासन दीन्ह्यौ तिया पग डारी।
कैधौं नवग्रह आय कहैं,
तुव पायन पै हैं गये बलिहारी।
प्याय पियूष हमैं अपने कर,
कीजिए आजु कृतारथ प्यारी॥

(५४)

छीन मृनाल कौ तन्तु ही है,
गनितज्ञ की रेख की है किधौं साखी ।
कै तिहुलोकनि की सुखमा कहँ,
कंचन किंकिनी बाँधिके राखी ।
या तिय की कटि की उपमा,
परब्रह्म लौं जात नहीं कछु भाखी ।
याकौ सरूप बिलोकन काज,
दई बिधि क्यों न अनेकन आँखी ।।

(५५)

जा चख की सुखमा लखि पंकज,
कीच में जाय गड़े हिय हारे ।
खंजन हू उड़ि भागे अकास,
दुरे बन जाय कुरंग बिचारे ।
मीन गये छिपि नीर अगाध,
दिखावें नहीं मुख लाज के मारे ।
सो हमें प्यावत वारुनी आजु,
उदै निहचै भये भाग हमारे ।।

(५६)

जासु कौ आनन की दुति हेरि,
कुमोदनी चन्द न द्योस लखाहीं ।
लाजनि लागि सरोजनि-वृन्द,
कबौ निसि माहिं नहीं बिगसाहीं ।
सो रति की मद-मोचिनी वाम,
मिली बड़ भागनि सौं हम काहीं ।
लोचन लाहु लह्यो सिगरे,
पै कछू कहियो बलिराज सौं नाहीं ।।

(५७)

नीलम सौं जरे हेम के कंकन,
धारि कै सोभा बढ़ी कर केरी ।
ज्यौं अलि सम्पुट-बन्द-सरोज-
मृनाल की नाल लियो मिलि घेरी ।
औ बहु रंग की वामै परीं,
चुरियाँ खनकैं सो कहैं मनौ टेरी ।
त्यागि गयो महि कौ सुर रूख,
बदानिता या कर कंज की हेरी ॥

(५८)

या बिधि दैतनि की बतियाँ सुनि,
घूँघुट खोलि कछू तिय दीन्ह्यों ।
औ तिनकौ तनहू मन वाम,
सबै बिधिसों अपने बस कीन्ह्यों ।
बैठन कौ तिन्हें पाँति बनाय,
कछू मुसकाय कै आयसु दीन्ह्यों ।
बैठे अदेव जबै चुप साधि,
तबै तिय ने करमै घट लीन्ह्यों ॥

(५९)

बारुनी और पियूष के कुम्भनि,
ल्याय दियो तिन सामुहे धारी ।
हीरक औ, पुखराज की मंजुल,
द्वैक कटोरी अनूप निकारी ।
प्यावन लागी सुरासुर को,
सुधा बारुनी कौ तिन मैं तिय ढारी ।
पै तेहि के रस के बस ह्वै,
रहे पीवत ऐसी गई मति मारी ॥

(६०)

बारुनी कौ तिय हीरा कटोरी मैं,
ढारि अदेवनि के ढिग ल्यावत ।
त्यौंही सुधा भरि के पुखराज-
कटोरिया मैं सुरवृन्द छकावत ।
या बिधि चालनि कौ तिय की,
नहिं ता समै कोऊ तहाँ लखि पावत ।
देत सँतोष रही सबकौ,
इमि छद्मतिया सुरकाज सजावत ॥

(६१)

जानि कछु देवनि की कुटिल कराल चाल,
बैठ्यो राहु सुर-वपु धारि तिन्ह ओर आय ।
लैकै अमी पियन लग्यौ सो जबै त्यों ही ससि-
दीन्ह्यो सुरराज कौ सँकेतनि सौ समुझाय ।
लीन्ह्यो तिन कुलिस प्रहारचौ कोपि ताके सिर,
दीन्ह्यों पल मारत ही ताहि धर सौं उड़ाय ।
अमिय प्रभावसौं न मरचौ, रुण्ड मुण्ड दोऊ,
राहु केतु ह्वैकै बलि सिबिर पुकार्‌यो जाय ॥

पंचम सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—दैत्य सिबिर महँ प्रात ही, जुरी सभा हरषाय ।
राहु देह जुग खंड सब, देख्यौ अचरज पाय ।।

बलि दिसि निरखि रुंड कर जोरी ।
भाख्यौ मुंड गिरा दुख बोरी ।।
"प्रभुहि अछत अस हाल हमारा ।
कृत अपराधहिं कौन उबारा ।।
आये नाथ सिबिर निज जबहीं ।
भयो विचित्र चरित इक तबहीं ।।
भयो अमिय सब सुरा हमारो ।
सुरन पियूष पान करि डारो ।।
जब मैं सुन्यौ अमिय तिन पायो ।
देव रूप धरि तुरत सिधायो ।।
बैठ्यौ तहँ पंगति मधि जाई ।
हेमकुम्भ गहि तिय इक आई ।।
प्याय सबन मम निकट पधारी ।
दियो अमिय अंजुलि महँ डारो ।।
हौं मुख माहिं जबहिं तेहि डारी ।
दीन्ह्यौं ससि सुरेस सनकारी ।।

(२)

दोहा—लहि मयंक संकेत तिन, लीन्यौ चक्र उठाय ।
पल मारत मम सीस कौ, धड़ तैं दियो उड़ाय ।।

कछुक पियूष गयौ तन माहीं ।
या तैं नाथ मर्यौ मैं नाहीं ।।

ब्यापी वज्र बिथा तन बाँकी ।
परचौ रह्यौं तेहि ठौर इकाकी ।।
मुरछा बिगत जबहिं सुधि आई ।
तब प्रभु सिबिर चल्यों दुख पाई ।।
लीजिय नाथ कुंभ सो देखी ।
अवसि भयौ कछु कपट बिसेखी ।।"
सो सुनि नृप घट तुरत मँगायो ।
देखि हिये अति अचरज आयो ।।
पूछचौ नृप तब नैन तरेरी ।
भाख्यौ दैत्य कथा मग केरी ।।
कैसे मिली तिया तहँ आई ।
कैसे तिन मति दियो भ्रमाई ।।
कैसे कुंभ बदलि तिन लीन्ह्यौ ।
गह्यौ पियूष बारुनी दीन्ह्यौ ।।

(३)

दोहा—सुनत तासु मुख बचन इमि, जान्यौ सकल हवाल
देस काल बल गुनि तबहिं, लौटचौ दैत्य भुवाल ।।

अमरपुरी उत देव पधारे ।
इतै असुर निज देस सिधारे ।।
भोरहिं बलि निज सभा बुलाई ।
आये सकल दैत्य समुदाई ।।
तबहिं सचिव नरपति रुख पाई ।
कही सबनि इमि गिरा सुनाई ।।
"सब मिलि कै जलरासि मथायौ ।
कियो अमित स्रम कष्ट उठायौ ।।
देवन कपट जाल इमि कीन्ह्यौ ।
नहिं सम भाग लाभ महँ दीन्ह्यौ ।।

लीन्ह्यौ रमा, धेनु, तरु, रम्भा ।
तऊ कीन्ह अन्याय अरम्भा ।।
मनि, गज, बाजि, आदि बहुतेरी ।
सम्पति अखिल अम्बुनिधि केरी ।।
छल करि लीन्ह्यौ सकल छिनाई ।
अमिय लियो मति दियो भुराई ।।

(४)

दोहा––याते सब मिलि आपनो, कहौ सुतंत्र बिचार ।
या बिधि देवनि सौं दबे, नहीं कतहुँ निस्तार ।।"

बोल्यौ सचिव जुगुल कर जोरी ।
"छमिय नाथ कछु अविनय मोरी ।।
पै अब लवन खाय प्रभु केरो ।
भाखे बिना अधर्म घनेरो ।।
पच्छिराज दनुजहु प्रभु भाई ।
लीजिय तिनहिं नाथ बुलवाई ।।
यह अनीति तिन सौं कहि दीजै ।
बहुरि अपर चर्चा कछु कीजै ।।"
आये दनुज तुरत सुधि पाई ।
दीन्ह्यौं गरुड़ सँदेस पठाई ।।
"देव-दैत्य मोहिं दोउ सम लागे ।
लखि गृह कलह संग हम त्यागे ।।
परे आइ हरि चरननि माहीं ।
घर की रारि देति कल नाहीं ।।

(५)

दोहा––जस तुम्हरे मन आवही, सोइ आचरहु सुजान ।
सकै टारि तेहि कौन जो, रचि राख्यौ भगवान ।।"

सकल प्रसंग सुन्यौ जब काना ।
दनुजन तेहि अति अनुचित माना ।।
तिन कह "नृपति बनत कत दीना ।
रह्यौ न्याय करबाल अधीना ।।
जौ लगि वा कर रहत कृपानी ।
नाहिन भूप भई कछु हानी ।।
हम दैहैं नृप साथ तुम्हारौ ।
यातें नेकु न साहस हारौ ।।
लीजिय चलि अमरावति घेरी ।
साजि बाजि गज सैन घनेरी ।।
भेजिय दूत अमरपति पासा ।
करै जाय इमि बचन प्रकासा ।।
"अर्ध भाग कै देहिं पठाई ।
कै आयुध धरि करैं लराई ।।
कमलहिं श्रीहरि भेजि न दैहैं ।
नहिं सुरेस रम्भहिं लौटैहैं ।।

(६)

दोहा——तब तिनसौं रनखेत लरि, बदलो लेहु चुकाय ।
अरु कुबेर कौ कोष सब, लीजौ भूप लुटाय ।।"

दानव बचन सबनि प्रिय लागे ।
मनहुँ बीर रस सोवत जागे ।।
फरकि अधर-पुट भौंह मरोरी ।
कह बलि-बंधु जुगुल कर जोरी ।।
"अनाचार परमावधि आई ।
नाथ ! अनीत सही नहिं जाई ।।
लखहिं अनर्थ रहहिं मन मारे ।
प्रभु सहाय धनु हाँथ हमारे ।।

करिकै नास देव परिवारा ।
लैहौं अंस बाँटि द्वै फारा ।।
सुरपति नगर बीर अस को है ।
रहै ठाढ़ मम सम्मुख जो है ।।
समर सुरेस चमू-चय काटी ।
देहुँ मिलाय मांस अरु माटी ।।
ह्वै सरोष धनु सायक साधौं ।
नागपास इन्द्रहि गहि बाँधौं ।।

(७)

दोहा—जो राउर दिसि भूप कोउ, देखै नैन उघारि ।
मानि अमित अरि तासु जुग, लोचन लेहु निकारि ।।"

बंधु बचन सुनि बलि हरखाने ।
"साधु साधु कहि तेहि सनमाने ।।
निहचै होत बंधु नृप बाँही ।
करत राज वाकी भुज छाँही ।।"
बानासुर बोल्यौ कर जोरी ।
"नाथ ! सुनिय बिनती एक मोरी ।।
सेनापति मोहि देहु बनाई ।
लरौं कुमार संग मैं जाई ।।
आयुध अमित दीन्ह हर मोकौं ।
अरु कह कोऊ न जीतै तोकौं ।।
षटमुख समर भार मैं लैहौं ।
आगे रथहि बढ़न नहिं दैहौं ।।
गुरु-सुत जानि मारिहौं नाहीं ।
लैहौं बाँधि अवसि रन माहीं ।।
नृप ! हर वचन मृषा नहिं ह्वैहै ।
सिव-सत समर बिजै हम पैहैं ।।

(८)

दोहा—हौं अकिलो रनखेत महँ, करौं समर घमसान।
गज चढ़ि देखैं आप कस, लरत रावरो बान ॥"
चुप ह्वै रह्यौ बान इमि भाखी।
कह्यौ असुर-गुरु तब मन माखी॥
"यह सब चाल बृहस्पति केरी।
जानत कूट नीति बहुतेरी॥
क्यौं नहिं सो गृह-कलह मिटावत।
सुरपहिं क्यौं न डाटि समुझावत॥
करिबौ अत्याचार अनीती।
ताको सहन और अनरीती॥
अनाचार सहि सीस नवावत।
ते कायर भूपाल कहावत॥
सिद्ध सान्ति सौं लहत तपस्वी।
पै न कबहुँ भूपाल मनस्वी॥
रिपु, रिन, अनल, रोग, नर-राई।
रंचकता इनकी दुखदाई॥
दीजै इनहि समूल उखारी।
यथा उदित तम नास तमारी॥

(९)

दोहा—याते आयसु मानि मम, करिय अवसि संग्राम।
मेरौ मन याही कहत, ह्वैहै सुभ परिनाम॥"
अस कहि सुक्र मौन गहि राख्यौ।
तब कर जोरि सचिव इमि भाख्यौ॥
"नाथ! मुदित मन देहु रजाई।
गुरु आयसु अब मेटि न जाई॥

राजकुमार रनहि अभिलाषत ।
सोई सबै सभासद भाखत ।।
अत्याचार जु पै सहि लैहैं ।
कायर असुर समूह कहैहैं ।।
याते नाथ रनहि मन दीजै ।
अब प्रभु और विचार न कीजै ।।
देहु कपट फल तिनहिं चखाई ।
कीजै संधि भाग सम पाई ।।
यामैं नृपति ! बिलंब न नीको ।
लागत सिर कलंक कौ टीको ।।
होतहि प्रात पयानो कीजै ।
सपदि घेरि अमरावति लीजै ।।

(१०)

दोहा—ऐरावत, रम्भा, रमा, देहि सुरभि, तरु फेरि ।
ना तरु सुरनि प्रचारि प्रभु, कीजै समर दरेरि ।।"

सचिव बचन सुनि बलि मुसकाने ।
ताहि सराहि अमित सनमाने ।।
"तुम सन सचिव भाग्य सन पाई ।
लही दैत्य बंसिन प्रभुताई ।।
हमहुँ धरब सिर गुरुअ रजाई ।
भावै सबनि करौ सो जाई ।।"
सुनि बलि-बचन सभा हरखानी ।
बरस्यौ सालि खेत जनु पानी ।।
रन-मंत्रिन नृप तुरत बलावा ।
कह्यौ "चलन कर करहु बनावा ।।"
गृह-मंत्रिहिं इमि दीन्ह रजाई ।
समर-निमंत्रन देहु पठाई ।।

लै निज सकल कटक की सामा ।
आवैं भूप करन संग्रामा ॥
मिलैं सुमेर सैल ढिग आई ।
सभा बिसर्जन नृपति कराई ॥"

(११)

दोहा—तब बानासुर, बंधु संग, गयो भूप रनिवास ।
नाय नृपति पद पदुम सिर, गौनी सभा अवास ॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू ।
सबनि समर हित अमित उछाहू ॥
प्रातहि लगे बजन बहु बाजन ।
बाहन अस्त्र लगे सब साजन ॥
सब मिलि भूप द्वार चलि आये ।
भरे उछाह अमित छबि छाये ॥
तब लगि बलि निज अनुज समेता ।
बानासुरहु कढ़चौ सुर जेता ॥
गनपति गौरि गिरीस मनाई ।
गज चढ़ि चल्यौ भूप हरखाई ॥
कोउ दधि मीन आय दरसावत ।
सुरभी सनमुख बच्छ पियावत ॥
सधवा बाम गोद सिसु कीन्हें ।
जल-युत कुंभ तिया कटि लीन्हें ॥
दच्छिन नैन बाहु तब फरकी ।
करकी करी करी बखतर की ॥

(१२)

दोहा—सुभ सूचक मंगल सगुन, गुनि हिय अमित उछाह ।
बिजय आस करि सैनजुत, सपदि चले नर-नाह ॥

बाजत सैन सैन पर डंका ।
होत महा रव घोर अतंका ।।
धुन्ध पूरि इमि चहुँ दिसि रहेऊ।
मनहुँ साँझ दिन मनि छिपि गयऊ ।।
हाली धरा सेस फन डोले ।
करि चिक्कार द्विरद बहु बोले ।।
गुहा माँहि निंदिया तजि गाढ़ी ।
सिंहिन आइ द्वार पै ठाढ़ी ।।
भागे सब बनचर भय मानी ।
हलत थार पारा सम पानी ।।
चहुँ दिसि उड़त धूरि इमि हेरो ।
धूम प्रताप-हुतासन केरो ।।
कै विधि पंच प्रभूत मिटाई ।
रेनु मई नव रीति चलाई ।।
कै भुव-भार निवेदन लागी ।
पहुँची रेनु स्वर्ग भय-पागी ।।

(१३)

दोहा—या बिधि केतिक दिनन चलि, हेमकूट के पास ।
किया सिबिर बलि राज तहँ, लखि सब भाँति सुपास ।।

तँह निसि बसि मग खेद गमाई ।
प्रातहि जग्यो सुभट समुदाई ।।
चारन बंस प्रसंसन लागे ।
सुनि बर गिरा दैत्यपति जागे ।।
प्रातकृत्य करि सबन बुलाई ।
कीन्ह्यौं रन-मंत्रना सुहाई ।।
तुरत भूप इक दूत बुलायो ।
अरु सुरेस हित पत्र लिखायो ।।

"सब मिलि सागर मंथन कीन्ह्यौ ।
पै सम भाग हमहिं नहिं दीन्ह्यौ ।।
छल करि सकल रत्न तुम लीन्ह्यौं ।
याहू कौ हम सोच न कीन्ह्यौ ।।
किय संतोष अमिय घट माँहीं ।
सोऊ दीन्ह हमहिं तुम नाहीं ।।
कपट नारि कौ भेष बनाई ।
लियो बदलि तेहि असुर भुराई ।।

(१४)

दोहा—संतति एकहि बंस के, देव दैत्य हम दोय ।
या बिधि के आचरन सौं, अहित घनेरो होय ।।

याते कह्यो हमारौ कीजै ।
बंस बिनास कलंक न लीजै ।।
जैहैं बंधु बंधु सन मारे ।
कलह नीक नहिं मतै हमारे ।।
रम्भा, रमा, रूख, गज, फेरी ।
दीजै तुरत न लाइय देरी ।।
याही मैं कल्यान तुम्हारो ।
देहु बाँटि सम-भाग हमारो ।।
नेकु न्याय करि तुमहिं बिचारो ।
अबहूँ बंस बिरोध निवारो ।।
जौं सम भाग सुरेस न दैहौ ।
तौ इत राज करन नहिं पैहौ ।।
लैहौं भुज बल भाग बटाई ।
तब चलिहै नहिं नेकु चलाई ।।
अवधि देत द्वै बासर केरी ।
यामै देहु भाग सम फेरी ।।

(१५)

दोहा—जो याकौ अनुकूल नृप, उतर देत तुम नाहिं ।
स्वागत कीजै आय कै, तब रन-खेतन माहिं ॥"

चरवर मुख सुरेस सुधि पाई ।
विकट सुरारि चमू चलि आई ॥
निज करनी गुनि कछुक सकान्यौ ।
ह्वैहै युद्ध अवसि जिय जान्यौ ॥
अस गुनि सकल समाज बुलाई ।
आये सुर-समूह तेहि ठाँई ॥
जम, कुबेर आदिक दिगपाला ।
षटमुख जुत आये तेहि काला ॥
बैठे निज निज आसन जाई ।
कीन्हीं रन-मंत्रना सुहाई ॥
कह सुरेस "अब काह बिचारा ।
आयो असुर सेन बरियारा ॥"
षटमुख कह्यौ "मोर मत लीजै ।
आयौ सत्रु अवसि रन कीजै ॥"
तौ लगि इमि प्रतिहार जनायो ।
नाथ ! सुरारि दूत इक आयो ॥

(१६)

दोहा—आयसु पाय सुरेस कौ, तेहि लै गयो लिवाइ ।
दई दूत बर पत्रिका, षटमुख हाथ गहाइ ॥

सुरप संकेत पत्र तिन बाँचो ।
जौ कुछ लिख्यौ हुतो सब साँचो ॥
कह्यौ सुरेस "कहौ मत भाई ।
रम्भा, रमा, दई किमि जाई ॥

हय, गज, धेनु, बिटप नहिं दैहैं ।
देवनि सीस कलंक न लैहैं ।
करिहैं अवसि समर सक नाहीं ।
लखिहैं बल केतो तिन माहीं ।।"
सकल सभा मिलि मंत्र दृढ़ायो ।
करिय युद्ध जो अरि चलि आयो ।।
सो सुनि अति सुरेस अनुरागे ।
हरषित हीय कहन इमि लागे ।।
"भोगी बीर धरा कौ नामा ।
करै भोग जो नृप बल धामा ।।
लेहि राज जौ बल भुज मांही ।
माँगै ताहि देत कोउ नाहीं ।।"

(१७)

दोहा—इमि उत्तर लिखि दूत कर, दीन्यौ पत्र पठाय ।
सुरप समर हित सजन कँह, देवन दीन्ह रजाय ।।

प्रात होत रन कीन तयारी ।
साजी देव चमू चय भारी ।।
संख-धवल जामैं हय लागे ।
मन ह्व जाय सकै नहिं आगे ।।
चढ़े "विजित्वर" रथ छवि छाये ।
धनु धरि सम्भु सुवन चलि आये ।।
मनि-मय दिव्य मुकुट सिर राजत ।
दिनकर प्रभा देखि जेहि लाजत ।।
स्रवननि कुंडल लोल सजाये ।
सक्ति खड्ग सर चाप सुहाये ।।
कोउ चामीकर छत्र लगाये ।
कोउ चामर लै सीस डुलाये ।।

जटा कलाप ब्याल सन बाँधे।
ज्वलत त्रिसूल प्रबल कर साधे ॥
किये हिमाद्रि बृषभ असवारी ।
चले रुद्र सिव-सूनु पछारी ॥

(१८)

दोहा—अचल - पच्छ - दारन - कुसल, कुलिस लिये निज हाथ ।
ऐरावत हिम - स्रंग - निभ, चढ़ि गवने सुरनाथ ॥
करि मदमत्त मेष असवारी ।
चल्यौ सिखी सुरनाथ पछारी ॥
आयुध धरि कहि बलकत बैननि ।
क्रोध कृसानु कढ़त दोउ नैनन ॥
नील-इन्द्रमनि-काय बिसाला ।
चढ़्यौ महिष चलि जम दिगपाला ॥
महा मेघ जे मग महँ आवत ।
तुरत स्रंग सन तिनहिं हटावत ॥
किये प्रमत्त प्रेत असवारी ।
नैरित चल्यौ क्रोध करि भारी ॥
नूतन जलद सरिस भयकारी ।
महा मकर पै किये सवारी ॥
दारुन पास बाम कर लीन्हें ।
चले जलेस रनहिं मन दीन्हें ॥
धारे बिकट गदा कर माहीं ।
चले कुबेर सम्भु-सुत पाहीं ॥

(१९)

दोहा—दिग-अम्बर-व्यापन-कुसल, मृग चढ़ि अति छबि पाय ।
मरुत अमित रन लालसा, निज हिय चढ़्यौ बढ़ाय ॥

लखि इमि देव चमू चलि आई ।
सुरपति अमित हिये हरखाई ।।
बोल्यौ तब षटमुख तन हेरी ।
"करिय पयान न लाइय देरी ।।"
सो सुनि सम्भु सुवन सिर नाई ।
स्यंदन दीन्ह्यौ तुरत बढ़ाई ।।
गवनी देव - चमू हरषाई ।
उठी रेनु गये भानु छिपाई ।।
चले सवार तुरङ्ग नचावत ।
काम कबूतर लौं छबि छावत ।।
मत्त मतंगज कुधर समाना ।
चले धूरि करि चूरि पखाना ।।
उड़ी हेमरज सब तन छाई ।
जनु बसन्त रितु तनु धरि आई ।।
हाली धरा महीधर डोले ।
करि करि नाद देवगन बोले ।।

(२०)

दोहा—हेमकूट तें उतरि कै, इमि सुर सैन समूह ।
लख्यौ आइ तहँ सिन्धु सौं, दैत्य कटक कौ जूह ।।

करि निस समर-सिबिर बिसरामा ।
होतहि प्रात सकल बलधामा ।।
निज निज बाहन अस्त्र सजाई ।
सिमटे समुद समर हित आई ।।
दोउ दिसि बजे जुझाऊ बाजन ।
लागे बीर सिंह सम गाजन ।।
इत सुरेस को आयसु पाई ।
चक्रब्यूह षटबदन बनाई ।।

व्यूह द्वार पै आपु बिराजे ।
मध्य भाग पै सुरपति राजे ।।
आरनि पै दिगपाल सुहाये ।
चक्रव्यूह येहि भाँति बनाये ।।
धनवन्तरि अस्विनीकुमारा ।
करत आहतन को उपचारा ।।
घन गन करत जात मग छाँहीं ।
बहत बयारि मुदित मन माँहीं ।।

(२१)

दोहा—चित्रगुप्त कौ सिबिरि वर, तँह राजत इक ठाम ।
मोदीखाने की जहाँ, संचित सारी साम ।।

या बिधि लखि सुर सैन तयारी ।
साजी असुर कटक भयकारी ।।
तारक कमल-व्यूह निरमायो ।
सेनापति बलि-सुतहि बनायो ।।
मध्यभाग बलि आपु सुहाये ।
गज चढ़ि भानु सरिस छबि छाये ।।
अपर असुर बलिराज सहाई ।
सजग भये निज धनुष चढ़ाई ।।
संखनाद पूरचौ नभ जबहीं ।
धायो कोपि संभु-सुत तबहीं ।।
अति प्रचंड धनु सर कर लीन्हें ।
तीछन बान फोंक पर दीन्हें ।।
बानासुर लखि रथहिं बढ़ायौ ।
जहँ षटबदन तहाँ चलि आयौ ।।
अति बिनीत ह्वै कीन्ह प्रनामा ।
आसिष दीन्ह होय मन कामा ।।

(२२)

दोहा—कह्यौ बान प्रभु पितु चरन, करत सदा हम प्रीति ।
आपु सत्रु कौ पच्छ गहि, करत महा अनरीति ।।

(२३)

अनरीति इमि तुम करत कत बिसराय पूरब नेह कौं ।
मैलो कियौं गौरी बसन निज धूरि धूसर देह सौं ।
तुम संग ही पय पान कीन्ह्यों बैठि गिरिजा-गोद मैं ।
सीखे चलावन बान हम तुम सम्भु ही सौं मोद मैं ।।

(२४)

यहि लागि तुम सों कहत नातो बंधु को निरबाहिये ।
करुना-यतन कौ सुवन हिय येतो कठोर न चाहिये ।
गुरु भ्रात ही के गात पै कैसे प्रहारौं सायकै ।
यहि लागि तुम सों मंत्र बूझत बीर ! सीस नवायकै ।।

षष्ठ सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—बलिनन्दन मुख सौं सुनत, स्त्रवन सुधा सम बैन ।
सुमिरे पूरब प्रीति उर, पुलकि प्रफुल्लित नैन ।।

षटमुख कह्यौ "करौं का भाई ।
है कर्तव्य अमित दुखदाई ।।
ह्वैकै देव चमूचय नायक ।
क्यौं तिनको नहिं बनौ सहायक ।।
यह नित पच्छपात अवराधत ।
बीरनि कौ सनेह क्रम बाधत ।।
अस कहि गुह कोदंड चढ़ायो ।
होउ सजग कहि बान चलायो ।।"
सुनि गुह बचन बान रिसियायो ।
चंड चाप निज चोपि चढ़ायो ।।
"सजगअहौं" कहि बिसिख चलायौ ।
गुह-प्रेरित-सर काटि गिरायौ ।।
लग्यो बिसिख बानासुर मारन ।
काट्यौ सैन हजार हजारन ।।
बलि-सुत बान गिरत रन कैसे ।
प्रलय पवन कदलीबन जैसे ।।

(२)

दोहा—इत षटमुख धनु तानि निज, छाँड्यो बान कराल ।
धाये जनु रबि-कर निकर, कै बहु बिषधर ब्याल ।।

छन महँ असुर चमूचय काटी ।
दीन्ह मिलाय मांस अरु माटी ।।
सोनित सरित बही बिकरारा ।
गज बिसाल जनु जुगुल करारा ।।
रथ के चक्र अवर्त समाना ।
बार सेवार सरिस अनुमाना ।।
बहैं ढाल कच्छप सन मानौ ।
साँगी साँप सरिस जिय जानौ ।।
जोगिनि भूत पिसाच पिसाची ।
मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ।।
भच्छहिं मांस रुधिर पुनि पीवहिं ।
आसिख देहिं बीर दोउ जीवहिं ।।
कोऊ हार आँतन के धारत ।
कोऊ करेजो फारि निकारत ।।
कोउ मुंडन की माल बनावत ।
कोउ सचोप चरबी तन लावत ।।

(३)

दोहा—अंधधुन्ध इहि भाँति सौं, भयो भयंकर खेत ।
नाचत चौंसठ योगिनी, रुधिर पियत बहु प्रेत ।।

देख्यौ बान भयानक खेता ।
लीन्ह्यौ धनुष कियो चित चेता ।।
अग्निबान तिन कीन्ह प्रहारा ।
षटमुख बिसिख भये जरि छारा ।।
चहुँ दिसि प्रबल प्रगट भइ आगी ।
लागी जरन चमूचय भागी ।।
तब कुमार जल-बान चलावा ।
पल मारत सब अनल बुतावा ।।

त्याग्यो बान पवन को बाना ।
छनक माँहि जल सकल सुखाना ।।
आँधी उठी परम भय-दाई ।
दिये उड़ाय देव समुदाई ।।
ब्याल-बान षटवदन चलायो ।
नागन सकल पवन तहँ खायो ।
अरु धाये बहु बिषधर कारे ।
या बिधि बिपुल सैन संहारे ।।

(४)

दोहा—बानासुर अति कोप करि, तज्यो बर्हि कौ बान ।
छनही माँहि मयूरगन, कीन्ह्यौ अहि अवसान ।।

अंधकार सर गुह तब त्याग्यौ ।
देखत सकल पच्छिगन भाग्यौ ।।
या बिधि भयो घोर अँधियारा ।
सूझ न आपन हाथ पसारा ।।
अरि अरु मित्र परैं लखि नाहीं ।
जाने सिंहनाद सन जाहीं ।।
पढ़ि रवि मंत्र बान सर मारा ।
ताते फैलि रह्यौ उजियारा ।।
षटमुख कोपि कुधर सर त्यागे ।
चहुँ दिसि उड़न गगन गिरि लागे ।।
सो लखि दैत्य चमू भयमाना ।
त्याग्यो बान कुलिस को बाना ।।
गिरि से भयो बज्र जब दूनौ ।
फोरि पहार कियो सब चूनौ ।।
तड़ित अस्त्र षटमुख तजि दीन्ह्यौ ।
इमि पबि बान निवारन कीन्ह्यौ ।।

(५)

दोहा—दिव्य अस्त्र दोउ ओर तैं, दोऊ करत प्रहार ।
हिय हरखत बरखत बिसिख, जनु जलधर जलधार ।।

षट्मुख पुनि जम अस्त्र प्रहारा ।
मृत्यु अस्त्र तब बलिसुत मारा ।।
ब्रह्मबान गुह कोपि उठायो ।
नारायन सर बान चलायो ।।
अस्त्र अस्त्र सौं भयो निवारन ।
तब लाग्यो तीछन सर मारन ।।
गुह अपने मन माँहि बिचारा ।
अब मारौं बलि-राजकुमारा ।।
अस गुनिकै निज सक्ति प्रहारी ।
चली अकास करत उजियारी ।।
छिटकी ज्योति चली नभ कैसे ।
ग्रीषम के प्रचंड रवि जैसे ।।
लागी हृदय परत नहिं सूझी ।
महिं गिरि परचो सारथी जूझी ।।
जोती छूटि स्वबस ह्वै बाजी ।
चल्यो पलटि स्यंदन लै भाजी ।।

(६)

दोहा—बिरथ भयो बलिसुत जबहिं, देवन दुंदुभि दीन्ह ।
मुदित संभु-सुत कंबु गहि, बिजय संख धुनि कीन्ह ।।

जौलगि बान आप संभारचो ।
सम्भुकुमार सैन बहु मारचो ।।
प्रलयकाल महँ संकर जैसे ।
षटसुख सैन सँहारत तैसे ।।

जथा बनज-बन करि मथि डारै ।
जैसे बाज लवा संहारै ॥
जिमि-करि निकर सिंह हनि डारै ।
खगगति अहि-बरूथ जिमि मारै ॥
सन्मुख सैन दृष्टि जो आई ।
छन महँ षटमुख मारि गिराई ॥
इतै बिरथ बलि-राजकुमारा ।
भयो आन रथ पै असवारा ॥
अरु मारथि स्यंदन पलटावा ।
लै षटमुख सनमुख तब आवा ॥
सिंहनाद करि हाँक सुनायो ।
"सँभरौ देव ! बान रन आयो ॥

(७)

दोहा——जब न रह्यौं रन माहिं, तुम कीन्ह्यो सैन निपात ।
अब मारौ जो पै चमू, तब परखौं बल तात ॥

हौं अपने मन यह प्रन धरहूँ ।
एक बान राउर बध करहूँ ॥
भूलिहु बान छुवौ जो आनहिं ।
तौ मोंहि सम्भु चरन की आनहिं ॥
जो अनन्य मैं तुव पितु दासा ।
तौ यह बान करै तुव नासा ॥"
अस कहि महा-काल-सर लीन्ह्यो ।
पढ़ि के मंत्र फोंक पर दीन्ह्यो ॥
देखि त्रास देवनि जिय बाढ़्यो ।
बान त्रोन सों जब सर काढ़्यो ॥
स्रवन प्रयंत सरासर तान्यो ।
छूटत बान सन्द घहरान्यो ॥

षटमुख लगे कठिन सर मारन ।
पै न सके वह बान निवारन ।।
बच्छस्थल तकि मारत भयऊ ।
छाती फारि निकर सर गयऊ ।।

(८)

दोहा--मूर्च्छित गुहहिं बिलोकि रन, सारथि रथ पलटाय ।
तेहि अस्विनीकुमार के, सिबिर दियो पहुँचाय ।।
तिन तुरतहिं ब्रन बन्धन कीन्ह्यो ।
मुरछा सम्भु-सुवन तजि दीन्ह्यो ।।
अरु कीन्ह्यो अनेक उपचारा ।
बिगत खेद भौ उमा-कुमारा ।।
चाह्यो चलन धनुष गहि पानी ।
बरज्यो देव-वैद्य तब आनी ।।
"द्वैक घरी प्रभु युद्ध न कीजै ।
ओषधि कौ प्रभाव लखि लीजै ।।"
कर गहि तिनहिं सिबिर महँ लायो।
तहाँ कछुक बिश्राम करायो ।।
मूर्च्छित भयो संभु-सुत जबहीं ।
पूरचो संख बान रन तबहीं ।।
षटमुख गिरत प्रलै ह्वै गयऊ ।
धीरज छाँड़ि सुरन हिय दयऊ ।।
भागी देव-चमू भय - पागी ।
जीतन आस हिये तैं त्यागी ।।

(९)

दोहा--अमित त्रसित सुर सैन मैं, मच्यो घोर कुहराम ।
होन लग्यौ चहुँ ओर ते, पुनि संहत संग्राम ।।

इत सुर कटक बिहाल त्रिलोकी ।
ससि निज रोष सक्यो नहिं रोकी ।।
करि अति कोपि सरासन ताना ।
लाग्यो निसित चलावन बाना ।।
या बिधि सों निसिपति सर मार्‍यो ।
धनु, गुन, खंडि बान कौ डार्‍यो ।।
करि धनु सगुन बान सर त्यागे ।
बिधु-रथ-कुरँग न ठहरत आगे ।।
बानासुर ससि लरहिं प्रचारी ।
दोउ अति सबल न मानहिं हारी ।।
तब मयंक मन मंत्र बिचारा ।
करौं बिरथ बलि-राजकुमारा ।।
अस मन गुनि बहु बिसिख पँवारे ।
रथ सारथी बाजि हनि डारे ।।
चढ़ि रथ अपर बान रन कीन्ह्यों ।
पै त्रै बार बिरथ ससि कीन्ह्यों ।।

(१०)

दोहा—रवि अथवत लखि सैन दोउ, कीन्ह्यों सिबिर पयान ।
बीरन धर्‍यो उतारि निज, अस्त्र कवच सिरत्रान ।।

भोजन करि कछु लहि बिस्रामा ।
बानासुर गवन्यो गृह-धामा ।।
लखि तेहि संभु-सुवन हरखाई ।
लियो भुजा भरि कण्ठ लगाई ।।
पुनि निज आसन पै बैठारा ।
कीन्ह्यों बिबिध भाँति सतकारा ।।
औंसरि रहे देर लौं खेलत ।
बिहँसि तमोल दुहू मुख मेलत ।।

गयो कुमार सिबिर सुरनाथा ।
बानासुर नायो पद-माथा ।।
आसिष दियो मुदित मन ताही ।
पुनि रन-कौसल सकल सराही ।।
यहि बिधि तँह कछु समय बिताई।
आयो सिबिर बान हरखाई ।।
सब मिलिकै यह मंत्र दृढ़ायो ।
सेनापति तारकहिं बनायो ।।

(११)

दोहा—प्रातहिं नव-जलधर-ब्रपुष, मनहुँ अपर नगराज ।
चढ़ि मतङ्ग तारक असुर, कियो युद्ध कौ साज ।।

अंकुस हन्यौ महावत जबहीं ।
धायो कोपि मत्तगज तबहीं ।।
कुंजर सीस जबहिं सर लागे ।
किय चिक्कार बाजि सुनि भागे ।।
खैंचि लगाम सारथी हारे ।
ठहरत तुरँग न भय के मारे ।।
सैन मध्य सोहत गज कैसे ।
मथत सिन्धु कज्जल गिरि जैसे ।।
तेहि बिलोकि सुर निकर डराने ।
केतिक आयुध डारि पराने ।।
खरभर मच्यो ब्यूह सब टूटे ।
साहस सपदि देव हिय छूटे ।।
रथनि सुण्ड गहि गज फटकारै ।
चापि पदाति चरन तर डारै ।।
सम्मुख आय वीर सर जोरत ।
तारक बिसिखि सबन सिर फोरत ।।

(१२)

दोहा—बिकट दैत्य की मारु तें, काहू धरचौ न धीर।
बिडरि भगे रन-खेत ते, बड़े बड़े बलवीर ॥
भागन लगे देवगन जबहीं।
कियो संख धुनि तारक तबहीं ॥
सिंहनाद करि हाँक सुनायौ।
है कोउ सुभट जो सम्मुख आयौ ॥
अखिल देव कुल मारि गिरायौ।
एक छत्र बलिराज करायो ॥
देव-बंस नहिं एक उबारौं।
सेना-सहित आजु सब मारौं ॥
अपनो दल डोलत जब ताक्यौ।
मत्त महिष आगे जम हाँक्यौ ॥
महिष दुरद सोहत रन कैसे।
लड़त जुगुल कज्जल गिरि जैसे ॥
एकहि गदा सीस जम दयऊ।
पाँच पैंगि पाछे गज गयऊ ॥
गदा घाव गजराज सँभारचौ।
झझकि सीस आगे पगु धारचौ ॥

(१३)

दोहा—जमहिं लरत यहि भाँति लखि, तारक गहि कोदंड।
निसित बिसिख बरसाय बहु, कियो दंड जुग खंड ॥
अस्त्र हीन जम कहँ लखि पायो।
हँसि तारक इमि बचन सुनायो ॥
अंतक ! धनु सँभारि निज लीजै।
सावधान मोसों रन कीजै ॥

सब मिलि घेरि तारकहिं लीन्ह्यो।
महा मार तेहि ऊपर कीन्ह्यो ॥
वृषभनि मध्य लसत गज कैसे ।
जमुना मिलीं गंग महँ जैसे ॥

(१५)

दोहा—अरु सोनित स्यन्दित अवनि, सो सरसुति सम लाग।
बीरन कौ रन भूमि इमि, पग पग होत प्रयाग ॥
अंकुस हनत कोप गज कीन्ह्यो ।
पकरि सुंड गजमुख की लीन्ह्यो ॥
खैंचन लग्यो अमित-बल-धारी ।
दियो काटि रद परसु प्रहारी ॥
सोनित स्रवत सोह तन कारे ।
जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ॥
दिरद रदन या बिधि ते टूटे ।
गनपति महाँ कष्ट सों छूटे ॥
इतै रुद्र तारक चहुँ घेरी ।
लागे करन मारु बहुतेरी ॥
दीर्घकरन तेहि रच्छन धायो ।
पै गजमुख बीचहिं अटकायो ।
परसु प्रहार गजानन कीन्ह्यों ।
दन्त उपारि असुर एक लीन्ह्यों ।
बिकल सकल तनु सुंड हिलावत ।
धावत इत उत बचन सुनावत ॥

(१६)

दोहा—पवन अरुनदृग सों लरत, विद्युतजीह्व कृसानु ।
असिलोमा जलपति लरैं, अन्धकार सौं भानु ॥

गनपहिं इमि रन-विमुख बिलोकी।
रिस कालिका सकी नहिं रोकी ॥
तिन गजमुख कहँ पाछे घाल्यो।
आगे सिंह कोपि करि चाल्यो ॥
गुहा सरिस मुख विकट पसारे।
दसन कढ़े अरु जीभ निकारे ॥
कर तीछन करवाल उठाये।
केस कलाप चहूँ बगराये ॥
सोनित दृगन कढ़त जनु ज्वाला।
पहिरे गर मुण्डन की माला ॥
हरिहिं हेरि गज भगत निहारयो।
अंकुस सीस महावत मारयो ॥
ताहू पर ठहरत सो नाहीं।
अति भय सहमि गयो मन माहीं।
तड़पत सिंह सहित तेहि देखी।
भयो अमित भय गजहिं बिसेखी ॥

(१७)

दोहा—धरत न पग आगे द्विरद, थाक्यो अंकुस मारि।
पग तारक संकेत सों, साँकरि दीन्ह्यो डारि ॥

निज सम्मुख कालिकहिं निहारयो।
तारक धनुष हाथ सों डारयो ॥
कुंतल कह्यो "अहो महराजा।
अपन अकाज करत केहि काजा ॥
हरि करि-कुम्भ अवसि चढ़ि ऐहै।
असि प्रहारि तिय तुमहिं गिरैहै।
याते नाथ विलम्ब न कीजै।
मारि गिराय अबहिं यहि दीजै ॥"

तारक कह "कत बचन उचारत ।
बीर न तीर तिया पैं डारत ॥
याते अस्त्र प्रहारि न दैहौं ।
निज कुल-कलित कलंक न लैहौं ॥"
लख्यो निडर बैठ्यो तेहिं जबहीं ।
बोली कोपि कालिका तबहीं ॥
"लेहि धनुष किन मूढ़ सँभारी ।
आइ गई बस मीचु तिहारी ॥"

(१८)

दोहा—कह तारक "हम तियनि पै, कबहुँ न डारत तीर ।
भेजु सपदि तापस-सुतहिं, बनत बड़ो जो बीर ॥"

सुनि इमि गिरा बीर-रस-सानी ।
लौटि गई रन त्यागि भवानी ॥
पुनि तारक कीन्ह्यो धनु धारन ।
लाग्यो देव चमू-चय मारन ॥
साँकरि खैंचि महावत लीन्ह्यो ।
पेलि गयंद कटक पर दीन्ह्यो ॥
मंगल बुध देखत यह धाये ।
दोउ निज बाजिनि ऍंड़ लगाये ॥
दोउ करि कुम्भ कोपि चढ़ि गयेऊ ।
बुध निज कुंत प्रहारत भयेऊ ॥
सो लाग्यौ हौदा महँ जाई ।
इमि तारक तन चोट न आई ॥
मंगल खड्ग प्रहारन कीन्ह्यो ।
तारक घाव ढाल पर लीन्ह्यो ॥
टूट्यो खड्ग मूठि कर लीन्हें ।
लौट्यौ बीर नमित मुख कीन्हें ॥

(१९)

दोहा—वेगवन्त रथ पै चढ़े, तुंग धुजा फहरात ।
धरि धनुसर कर संभु-सुत, आवत परचो लखात ।।

निरखि कुमारहिं सनमुख ठाढ़ा ।
तारक-हृदय कोप अति बाढ़ा ।।
"ढूँढ़चो तोहिं असुर-कुल-घाती ।
अबहिं सँहारि जुड़ावहुँ छाती ।।"
अस कहि बिषम बान संधाना ।
स्रवन-प्रयन्त सरासन ताना ।।
कह गुह "दैत्य कहा बौरायो ।
अन्तिम समै रावरो आयो ।।
जाके बल तुम्हरे मद भारी ।
जा बल अमित सैन संहारी ।।
एकहि बान ताहि संहारौं ।
समर खेलाय तुमहिं पुनि मारौं ।।"
अस कहि ब्रह्मबान कर लीन्हा ।
पढ़िकै मंत्र फोंक पर दीन्हा ।।
कुम्भस्थल तकि मारत भयेऊ ।
भेदि सीस बाहर सर गयेऊ ।।

(२०)

दोहा—गज गिरतहिं तारक असुर, गह्यो कठिन करवाल ।
धायो संभुकुमार दिसि, मनहु दूसरो काल ।।

बलकत बचन कहत बहुतेरे ।
दृग स्रोनित करि भौंह तरेरे ।।
"तापस-सुवन ! सँभरि रथ माहीं ।
आयो काल नेकु सक नाहीं ।।"

लखि निज सत्रु सामुहे आयो ।
अर्धचन्द्र सर कोपि चलायो ।।
सिर लै गयो गगन नाराचा ।
कर करवाल रुंड महिं नाचा ।।
एक हाथ यहि भाँति प्रहारचो ।
गुह-जुग-तुरँग काटि महि डारचो ।।
षटमुख निसित बिसिख कर लीन्ह्यो ।
अरु जुग खण्ड रुण्ड के कीन्ह्यो ।।
गिरचो कबंध अवनि पर आई ।
मनहुँ पवन गिरि स्रृंग गिराई ।।
धँसि गइ धरा भार बहु पाई ।
दियो सेष निज कनहिं नत्राई ।।

(२१)

दोहा—इमि तारकहिं गिराय रन, संभुकुमार प्रवीन ।
कियो संख धुनि जाहि सुनि, सैन-सिबिर मग लीन ।

वहुत दिवस बीते यहि भाँती ।
तदपि न मुरत प्रबल आराती ।।
दोऊ दिसि भट भिरहिं प्रचारी ।
कैसेहुँ हिये न मानत हारी ।।
अन्तिम दिवस सकल बलधामा ।
लागे करन संहत संग्रामा ।।
या बिधि अर्द्ध दिवस चलि गयेऊ ।
तब दोउ ओर महारन भयेऊ ।।
युद्धहि स्रमित बृहस्पति देखा ।
अपने जिय अचरज करि लेखा ।।
तब तिन आय बरजि दल राख्यौ ।
अरु इमि बचन सक्र सन भाख्यौ ।।

"लड़े अकेल सबै मिलि धाये ।
पैं बलि सौं रन जै नहिं पाये ॥
दैत्यन पर दयालु भगवाना ।
तिनको सहि न जाय नृप! बाना ॥

(२२)

दोहा——याही लागि सुरेस! सुनु, हौं बरजत हठि तोंहि ।
अब अनिष्ट सुत! सुरन कौं, परत लखाइहि मोंहि ॥
भाजै सकल सैन किन भारी ।
बिनु नरेस भाजे नहिं हारी ॥
अमरनाथ! यामैं नहिं लाजा ।
भागी कटक भूप नहिं भाजा ॥"
सुनि गुरु-बचन चरन सिरनाई ।
कह सुरेस इमि गिरा सुनाई ॥
"नाथ बचन तव मेटि न जाई ।
रन भागे जग अमित हँसाई ॥
या जग यदपि होत दुख नाना ।
सब ते कठिन बन्धु-अपमाना ॥
का मुख लाय घरहि प्रभु जैहैं ।
अबलनि कौ का बदन दिखैहैं ॥
सुरकुल सुजस होय सब धूरी ।
रहिहै अजस सकल जग पूरी ॥
रन ते भागि भवन जब जैहैं ।
अपने कुलहि कलंक लगैहैं ॥

(२३)

दोहा——अजहूँ सिर धर पर बन्यौ, अजहूँ चलत मम स्वाँस ।
मानि पराजय बंधु सौं, कैसे होंहुँ हतास ॥

अजहूँ कुलिस हाँथ महँ मोरे ।
छेद्यों पच्छ पहारनि केरे ॥
जौ लगि अस्त्र रहत मम हाथा ।
तौ लगि अरिहिं न नावत माथा ॥
सुरपति सत्रु कोऊ बरियारा ।
यहै अमित अपमान हमारा ॥
सोऊ रहै अमरपुर घेरे ।
धमकावै करि नैन तरेरे ॥
सुरप तजै रन पीठि दिखाई ।
याहू तैं बड़ि कौन हँसाई ॥
संभु-सुवन-सम सेनप जाके ।
दस दिगपाल सहायक वाके ॥
महाकाल मम दिस ते लरई ।
वाकी हानि कहा कोउ करई ॥
पुनि राउर असीस सिर मेरे ।
मीचहुँ आइ सकै नहिं नेरे ॥

(२४)

दोहा—याते गुरुवर करि कृपा, आसिष दीजै मोंहि ।
अबहिं सत्रु कौ मान मथि, बिजयी सुरगन होंहि ॥"

लखि उछाह सुरपति मनमाहीं ।
सुर-गुरु रोकि सक्यौ तेहि नाहीं ॥
सपदि नाय निज गुरु पदभाला ।
चल्यौ समर हित सक्र उताला ॥
अपनो दल डोलत जब ताक्यो ।
मत्त मतंग सुरप तब हाँक्यो ॥
निज गयंद बलि-बंधु चलायो ।
तेहि सुरेस सम्मुख पहुँचायो ॥

देवराज तब या बिधि भाख्यौ ।
"आये आपु बलिहिं कत राख्यौ ॥
तुम सन समर उचित नहिं भाई ।
राजा राजहिं सोह लराई ॥
पठवहु बलिहिं लरै सो आई ।
देखहुँ दैत्य - भूप-प्रभुताई" ॥
सुनि इमि गिरा लौटि सो आयो ।
अरु बलि सों इमि बचन सुनायो ॥

(२५)

दोहा—"खड़े पुरन्दर आपु सों, युद्ध करन के हेत ।
लरत भूप सों भूप कहि, मोंहि लरन नहिं देत ॥"

बंधु-बचन सुनि कछु मुसकाई ।
चल्यो सपदि बलि संख बजाई ॥
आवत बलिहिं बिलोक्यो जबहीं ।
सुरपति गजहिं बढ़ायो तबहीं ॥
दोऊ कर सर चाप सँवारे ।
फरकत अधर नैन रतनारे ॥
बलकत बचन कहन इमि लागे ।
सुनहु "दैत्य नरनाह ! अभागे ॥
घेरी अमरपुरी तुम आनी ।
रंचक कानि हिये नहिं मानी ॥
ताको फल प्रमुदित मन लहहू ।
दृढ़ करि धनुष बान कर गहहू ॥
देखौं आजु कितक बल तोरे ।
जो समुहाय समर सँग मोरे ॥
अब तुम सावधान ह्वै रहऊ ।
मारत हौं तीछन सर सहऊ ॥"

(२६)

दोहा—सुनि सुरपति के बचन इमि, बलि करि लोचन लाल ।
सगुन कियौ धनु सुमिरि गुरु, सायक साधि कराल ।।

दोऊ बीर क्रोध सन पागे ।
तीखन बान चलावन लागे ।।
सुरपति सर या बिधि सौं छाँटचौ ।
भूमि अकास बान सौं पाटचौ ।।
पै बलि नैकु न हीय सकान्यौ ।
सर संधानि प्रबल रन ठान्यौ ।।
दुहुँ ओर सर बरसत कैसे ।
भादँव जलद घटा नभ जैसे ।।
निसित बिसिष सुरपति फटकारचौ ।
कोपि बिरोचन-सुत-उर मारचौ ।।
लागत बान भई तन पीरा ।
रुधिर धार गा भीजि सरीरा ।।
तीखन बिसिख जबहिं हिय लाग्यौ ।
क्रोध अनल उर अंतर जाग्यौ ।।
स्रवन-प्रयंत खैंचि निज चापा ।
छाँड़चो बान अमित करि दापा ।।

(२७)

दोहा—काटचौ सब अरि के त्रिसिख, पुनि कीन्ह्यो सर-जाल ।
कस्यप - सुत के हिय हन्यौ, बलि नृप बान कराल ।।

तब बलि निज जन्तहिं सनकारचो ।
अंकुस तिन गज सीस प्रहारचो ।।
झझकि सुंड आगे पगु धारचौ ।
निज सिर ऐरावत सिर मारचौ ।।

तब सुरपति करवाल सँभारचो ।
वारन कुम्भ कोप करि मारचो ।।
सो पल मैं करि-कुम्भ समानी ।
जिमि छनदा घन माहिं बिलानी ।।
इमि गज-माथ दियो तिन फोरी ।
अरु मुकता महि माँहि बिथोरी ।।
इतै कोपि बलि गदा प्रहारी ।
ऐरावत मस्तक पै मारी ।।
सिर तैं बही रुधिर की धारा ।
घूमि परचो करि घोर चिकारा ।।
बलि सुरेस दोऊ महि आये ।
द्वन्द युद्ध करिवे मन लाये ।।

(२८)

दोहा—गह्यो कुलिस सुरनाह कर, बलि निज कर करबाल ।
दोऊ भिरे प्रचारि कै, कीन्हे क्रोध कराल ।।

उत सैनिक सुरराज सहाई ।
आइ गये निज संख बजाई ।।
इतै दैत्यगनहू मिलि धाये ।
बलि हरि लरत तहाँ चलि आये ।।
कह्यौ टेरि बलि तिन सन बाता ।
"कौतुक लखौ सकल मम भ्राता ।।
हम सुरेस करिहैं संग्रामा ।
जीतैं जुद्ध होय बलधामा ।।"
सुनि नृप गिरा सकल अनुरागे ।
बलि हरि जुद्ध बिलोकन लागे ।।
कोपि सुरप बलि कहँ ललकारा ।
"सावधान अब दैत्य-भुवारा" ।।

"सजग अहौं तुम करौ प्रहारा" ।
हँसि बोल्यौ बलिराज उदारा ॥
"इते दिनन लौं भई लराई ।
बिजय पराजय काहु न पाई ॥

(२९)

दोहा—देवासुर - संग्राम कौ, है अंतिम दिन आज ।
याते निज भुजबल सकल, प्रकट करौ सुरराज ॥"

लरत दुऔ तहँ मण्डल बाँधे ।
सैनिक सकल लखत चुप साधे ॥
कबहुँक मुरत कबहुँ पुनि भिरहीं ।
नाना भाँति दाँव दोउ करहीं ॥
जबहिं कोपि बलि खड्ग प्रहारत ।
सुरपति वार चर्म्म सौं टारत ॥
दोउ निज अस्त्र हाँक दै हाँकत ।
पद के भार मेदिनी काँपत ॥
कह बलि "अब सुरराज सँभारो ।
आजु जानिबो तेज तुम्हारो ।"
बारहिं बार कोपि बलि झरपत ।
पै सुरेस मन नैकु न डरपत ॥
लागत खड्ग कुलिस सों जबहीं ।
निकसत अग्नि-भभूका तबहीं ॥
चंचल चपल भिरत दोउ बीरा ।
मनहुँ बीररस धरे सरीरा ॥

(३०)

दोहा—पाँच घरी बलि इन्द्र सौं, भयो युद्ध यहि भाँति ।
अतिहि स्रमित दोऊ भये, पै नहिं मुरत अराति ॥

कोपि कुलिस सुरराज प्रहारा ।
महाबीर बलिराज सँभारा ।
ह्वै छत गई बीर की छाती ।
पाछे पग नहिं दीन्ह अराती ।।
बलि बल लखि सुरेस सकुचाने ।
धायौ दैत्यराज असि ताने ।।
एक हाथ इहि भाँति प्रहारयो ।
सुरपति चर्म काटि महि डारयो ।।
फारि बर्म हिय माहिं समानी ।
जनु नागिन बिल माहि लुकानी ।।
तब सुरेस कहँ मूर्छा आई ।
दैत्यन दुंदुभि दियौ बजाई ।।
पूरयौ संख मुदित बलि जबहीं ।
भागे भभरि देवगन तबहीं ।।
लगे दैत्य आनन्द मनावन ।
हरखि बिजै की धुजा उड़ावन ।।

(३१)

दोहा—रबि अथवत दोऊ चमू, लौटी सिबिरनि ओर ।
गये देव अमरावती, भयो युद्ध को छोर ।।

(३२)

इमि छोर रन कौ होत भागे देवगन सुरलोक कौ ।
इति दैत्यनन्दन मुदित मन आये सकल निज ओक कौ ।।
बलिराज उतैं बुलाइ नहुषहिं सुरप-सिंहासन दियो ।
सब बिधि सुसासन थापि कै, तब गमन निज-पुर कौ कियो ।।

———

सप्तम सर्ग

सवैया

(१)

नाँचत चौंसठि योगिनी भूत,
पिसाच महा मन में अनुरागे ।
गीध सिवा अरु स्वान सियार,
जहाँ बिचरैं सब संसय त्यागे ।
घायल ह्वै जे परे बर बीर,
न भागि सकैं अतिसै भय पागे ।
ता समै सीरी समीर लगे,
सुरनाथ तहाँ मुरछा तजि जागे ।।

(२)

खोलत ही चख चारिहू ओर,
लख्यौ तिन घोर झुकी अँधियारी ।
बेग सौं सोनित की सरिता बहै,
बीरन हीय भरै भय भारी ।
त्योंही महीधर स्रंग पै ओषधि-
बृन्द की देखि कछू उजियारी ।
ठाढ़ो भयो कर मैं गहि बज्र,
दियौ चलिबे कहँ पाँव अगारी ।।

(३)

सोचन लाग्यो सुरेस सुजान,
कहाँ अब ऐसे समै चलि जैये ।
जाइए जो अमरावती कौ,
अबलानि को आनन कैसे दिखैये ।
देखे जयन्त सची के बिना,
केहि भाँति सौं या मन कौ समुझैये ।
जो रहिए कहुँ जाय इकन्त,
तऊ अति सोच सौं चैन न पैये ॥

(४)

तौ लगि सोच्यो पतो हमरो,
मिलि कै सबै दैत लगावत ह्वैहैं ।
पै अँधियारी निसा मँह वै,
कतहूँ पथ खोजे न पावत ह्वैहैं ।
लीन्हें बिसाल मसालनि कौ कर,
मारग ब्याध दिखावत ह्वैह ।
बंदी बनावन काज हमैं,
वै सवार इतै चले आवत ह्वैह ॥

(५)

यों गुनि फाँदि पर्यो अरराय,
सुराधिप सोनित की सरि माँहीं ।
ठेलत बज्र सों लोथिन जात,
जे धार मैं ग्राह बने उतराहीं ।
चक्र अवर्त, औ कुन्त फनी,
सफरी असि, कच्छप ढाल लखाहीं ।
बारन कूल, कबंध ह्वै सूस,
सिवार सिरोरुह भेद है नाहीं ॥

(६)

पार कै सक्र दुरन्त नदी,
अमरावती की दिसि कौ मगु लीन्हो ।
मारग ही में मिल्यो चर आय,
सुनाय दसा तहँ की सब दीन्हो ।
"दैतनि घेरि लई नगरी,
भगि आयों इतै तिन मोंहि न चीन्हो ।
बेगि ही नाथ बताइए तौ,
अब चाहिए जो कछु या समै कीन्हो ॥"

(७)

मातु तनै तिय कौ तहँ सौध मैं,
सो घिरिबो सुनि कै घबरान्यौ ।
भाल मैं और लिख्यौ है कहा,
बिधि को कछू खेल न जात है जान्यौ ।
पै अति साहस कौ करिकै,
दुरभागि ही सौ लिरिबो हिये ठान्यौ ।
औ चर के सँग सोचत ही,
अमरावती या बिधि सों नियरान्यौ ॥

(८)

दीसै प्रकास न मंदिर मैं कहुँ,
जे उठि अम्बर कौ मनो चूमैं ।
सीतल मन्द समीर लगे,
कछु सैनिक हू निंदिया बस झूमैं ।
आगि जराये किते चर-बृन्द,
लखाई परे तँह सोवत भू मैं ।
लीन्हे मसाल लगावत हाँकनि,
बाँके सवार चहूँ दिसि घूमैं ॥

(९)

दीठि बचाय सवारनि की,

दुरि दोऊ गये जहाँ चोरदुवारो ।

देत सँकेत तबै चर के,

प्रतिहारी दियो चलि खोलि किवारो ।

पै दबे पाँयन सक्र सुजान,

जबै जननी-ग्रह मैं पगु धारो ।

मातु के त्यों पद पंकज कौ,

परस्यौ गयो बैठि न बैन उचारो ।।

(१०)

सुनतै ही सखी-मुख नाह कौ आवन,

सासु के गेह सची चलि आई ।

मातु अदेस सौं दासी तिन्हैं,

अन्हवाय कै बस्त्र दियो बदलाई ।

खड्ग को घाव लखे उर माहिं,

पुलोमजा आपु गई घबराई ।

पै सुरनाथ अनन्द सौं बैठिकै,

खाई दई जननी जो मिठाई ।।

(११)

मातु सुनौ कह्यौ सक्र बुझायकै,

"यौं घबराहट आपु न कीजै ।

दैत्य बिगारि सकैं न कछू, तुमरो

इतनो जिय माँहि पतीजै ।

होत प्रभात अकेले हमैं,

रन अंगन जान कौ आसिष दीजै ।

औ निज नैननि सौं जननी,

बिन प्रान परे तिनकौ लखि लीजै ।।

(१२)

अजहूँ लखौ बज्र लसै कर मैं,
अरु साहस हू नहिं टूट्यौ हमारो ।
बिधि बाम ही तौं प्रतिकूल भयो,
बिगरो है कहा लरिकै जु पै हारो ।
परिनाम यही है जुवाँ-रन को,
कोउ बैठत राज गयो कोउ मारो ।
गिरि-बृन्द के पंखन छेदनहार,
अबै जग जीवत लाल तुम्हारो ।।"

(१३)

रोस रचे सुनि बैननि कौ,
जननी रद आँगुरी दाबिकै भाख्यौ ।
"हे सुत ! देखौ कहा ह्वै गयो,
अब और कहा करिबे अभिलाख्यौ ।
दीन्हों तिन्हैं सम भाग नहीं,
फल याते कुनीतिहु कौ तुम चाख्यौ ।
घेरी चहूँ दिसि सौं नगरी,
यह देखिकै धीरज जात न राख्यौ ।।

(१४)

सैनिक आपुस मैं बतरात हे,
होत ही प्रात इतै बलि आइहै ।
तोरिकै तोरन द्वारनि कौ,
अमरावती की वह लूटि कराइहै ।
ब्योम त्रिचुम्बित सौध गिरायकै,
बान-तड़ाग इतै खनवाइहै ।
औ रबि को रथ रोकन हार,
बिरोचन-खम्भ इहाँ बनवाइहै ।

(१५)

मौ अनुरोध कौ मानिकै पूत, !
　　चले इतते अबहीं तुम जाओ।
मानसरोवर के मधि जाय,
　　मृनाल की नाल मैं गात छिपाओ।
बूढ़े बबा प्रतिपालन के हित,
　　या बिधि सौं निज प्रान बचाओ।
जाते स्ववैभव को अवसेष—
　　बिनास न नैननि सौं लखि पाओ॥

(१६)

मेरो अँदेसो करौ न कछू,
　　बलि मोंहि बिलोकि बिनीति दिखाइहै॥
त्यौं अबला गुनिकै बर बीर,
　　पुलोमजा पै नहिं हाथ चलाइहै॥
औ नृप-नीति कौ धारि हिये,
　　न जयन्तहू की दिसि दीठि उठाइहै।
बैर है वाको लला तुम सौं,
　　हम लोगनि सौं कटु क्यौं बतराइहै।"

(१७)

राति को या बिधि जात लखे,
　　जननी गृह ते तिन्है आपु निकारो।
दाबि अबेग सबै हिय मैं,
　　हँसी, आँखिन ते अँसुवा नहिं डारो।
दीन्हों असीष अनन्द सौं ताहि,
　　जबै पग बाहर कौ तिन धारो।
बंद कराय कै चोर-दुवार,
　　लगाय दियो तेहि में दृढ़ तारो॥

(१८)

जान समै जबै उत्तम आसिष,
देन लगी तिन्हें मातु असेसन ।
बैठि गवाछ पुलोमजा आपु,
लगी पिय को चलिबो अवरेखन ।
सूखे उसासन सौं अधरा,
अँसुवानि सौं भीजे उरोज बिसेसन ।
चंचल कै चख इन्द्र - बधू,
निज प्रानपिया को लगी इमि देखन ।।

(१९)

ठाढ़ो तहाँ पै हुतो सजो बाजि,
समीर कौ बेग लजावनवारो ।
तापै सवार भयो अमरेस,
औ मानसरोवर ओर सिधारो ।
पै पथरीली धरा पै परे–
हय टाप के, जागि परो रखवारो ।
सो चुप साधे कियो सरि पार,
दिखाई परो तब दूजो किनारो ।।

(२०)

"कौन है जात" सुने तेहिं हाँक,
लगे सबै भूकन स्वान सिकारी ।
पाहरू जागि परे लै मसाल,
सवारहु बाजिन को ललकारी ।
चारिहु ओर लख्यौ तिन धाय,
पै दीठि तरंगिनि पै जबै डारी ।
संक भयो उनके उर मैं,
जबही तिन तुंग तरंग निहारी ।।

(२१)

पूछै लगे सब आपुस में,
"सरिता महँ या खन कौन अन्हायो।
दीरघकाय कोई जलजन्तु,
किधौं कोउ सैनिकै खैंचि कै खायो।"
वा दिसि देखन काज सबै मिलि,
बारि प्रचण्ड अलाव जरायो।
पै कछु सोध न वाको लग्यो,
सबै जागत ही इमि रैनि बितायो॥

(२२)

होत ही प्रात लिये संग सैन,
तहाँ रदवक्र अधीस ह्वै आयो।
घायल बीरन कौ उपचार,
कियो बलि, औ वलनाथ पठायो।
सो अति कूरता सौं सिगरी,
नगरी अमरावती कौ लुटवायो।
ढूँढ़ि सबै गृह हारि गयो,
सुरनायक को कहुँ सोध न पायो॥

(२३)

सक्र - सिंहासन पै बलिराज कौ,
चित्र अनूप सजाय धरायो।
त्यौं ही सुरेस निसान गिरायकै,
आपनी ऊँची धुजा फहरायो।
दैत्य-धराधिप की चहुँ ओर,
दुहाई तहाँ पुर में फिरवायो।
सौंपिकै कोष सबै नहुषै,
तिन्हें सासक वा नगरी को बनायो॥

(२४)

बज्र कपाट लगे जेहि मैं,
अमरावती की दृढ़ अर्गला तोरी ।
त्यौं अभिमानी सुरेस के सैनिक–
बृन्दनि के अवलेप को मोरी ।
छीनिके सम्पति देवन की,
पुरिखानि ने जाहि हुती इमि जोरी ।
दुंदुभी देत बिजै की सबै मिलि,
आय गये निज राज बहोरी ॥

(२५)

केतिक द्यौस बिताय सुरेस,
हिमालय अंक मैं जाय पधारचो ।
जाति मरालनि की अवली,
तिनकौ अनुसारि कै बाजिहिं डारचो ।
त्यौंही तुषार-बिमंडित-स्रंग–
चढ़ाई बिलोकि कछू हिय हारचो ।
पै असुरेसनि कौ भय मानिकै,
पार कियो गिरि साहस वारचो ॥

(२६)

वा दिसि जाय हिमालय के,
तिन मानसरोवर कौ लखि पायौ ।
मानौ चहूँधा सिलानि घिरचो,
लघु सिन्धु सुधा कौ लसै लहरायो ।
तुंग तरंगनि कौ लखिकै,
अपने मन मैं अति आनन्द छायौ ।
त्यागि तुरंग निवारि स्रमै,
सर माँहि तबै बर बीर अन्हायो ॥

(२७)

किन्नर वृन्द लख्यो गहि बीन,
तहाँ अलकाधिप को जस गावत ।
त्यौंही तियानि बिलोक्यो अन्हाय,
मृगम्मद बिन्दु को भाल लगावत ।
देव - कुमारनि लै बनिता,
अपने कर सौं सर मैं अन्हवावत ।
जोगी कोऊ तेहि के तट बैठि,
रह्यो दृग मूँदि महेसहि ध्यावत ।।

(२८)

हेम सरोजनि सप्त मुनीस,
कहूँ सिव-पूजन के हित तोरैं ।
त्यों अरबिन्दनि बृन्दनि पै,
भरै भाँवरी कौहूँ मलिन्दनि झोरैं ।
होड़ लगायकै देव-तिया,
कोऊ पैरिकै जान चहैं वहि छोरैं ।
कोऊ अन्हायकै जायँ तटै,
पट को पहिरैं अरु चीर निचोरैं ।।

(२९)

राजमरालनि की अवली,
तट पै जहाँ केलि करै मदमाती ।
त्यों चकई चकवा के बियोगनि,
ह्वै रही है बिरहानल ताती ।
नूपुर की धुनि कौ सुनिकै,
नभ की दिसि हंसनि को भ्रम खाती ।
धारे संतोष कछू हिय मैं,
लखि देव-तिया-गन कौ अँगराती ।।

(३०)

पै ये बिलोचन कौ सुख दैन,
न नीके लगे कोऊ साज सुरेस कौ ।
धीरज कौन बँधावै तिन्हें,
खटको जिन्हें मातु-तिया सुत-देस कौ ।
आस की पासनि बाँधि हियो,
तिन झेल्यो असेस बिदेस कलेस कौ ।
याही अँदेस रह्यौ हिय में,
अमरावती सों नहिं पायो संदेस कौ ॥

(३१)

होत जो संक कहूँ अरि की,
तिन्है ध्यान तौ मातु निदेस कौ आवत ।
औ हरि-नाभि-मृनाल की नाल मैं,
जायकै आपनो गात छिपावत ।
बीति यै जात सबै दिन रात,
कबौं करजोरि महेस मनावत ।
या बिधि मानसरोवर मैं,
सुरनाथ रहे किते वर्ष बितावत ॥

(३२)

सारदी रैन मैं किन्नरी आय,
पियारे पिया के गरे भुज मेलैं ।
त्यों सुर - सुन्दरी मानस के,
तट बैठिकै चोर मिहिचिनी खेलैं ।
सीरी समीर लगै तन मैं,
लचकैं तिय मानौं हिलैं बर बेलैं ।
जानि न पावतीं ते सखियानि,
कपोलनि चुम्बन कौ भजैं जे लैं ॥

(३३)

चन्द्रिका पान करै हैं चकोर,
मयंकहि दीठि लगाय निहारी ।
त्यों घट माँहि भरैं अति चाव सों,
चन्द्रकला अंजुरीनि सौं प्यारी ।
दूध की धारैं बहैं थन सौं,
यह जानि कै कुम्भ लगावतीं ग्वारी ।
स्वेत सरोरुह को तजिकै,
कुबलैनि के भूषन साजती नारी ॥

(३४)

केती तिया सँग प्रेमिन के,
तँह रास बिलास के साज सँवारैं ।
नेह नहीं कहुँ बाल रसाल,
मृनाल-सी बाहु पिया गर डारैं ।
मंजु मयूर-सी नाचैं किती,
करि पैंजनी पायल की झनकारैं ।
औ अधरारस लैकै निसंक,
प्रकाम ते काम-बहार बगारैं ॥

(३५)

सीतल मंद समीर बही,
हिये काम की गाँसी गरावन लागी ।
कै सुधि प्यारी प्रिया की प्रवीर,
सुरेसहु के जिय मैं जगी आगी ।
त्यौंही बिनोद बहार की साध,
बहोरि बियोगी हिये महँ जागी ।
सोचन लाग्यो दसा अपनी,
बतियाँ कहि यौं करुनारसपागी ॥

(३६)

"हा मम कर्म बिपाकनि सौं,
सुख राज समाजहु को सब छूटचो ।
सेवत देव रहे हमरे पग,
सो अधिकार हहा विधि लूटचो ।
प्रान हू पाँवर पै न परात,
प्रभाव करै बिषहू नहीं घूँटचो ।
जानि परै हमको अब तौ,
सत जज्ञनि हू को भयो फल झूँठचो ॥

(३७)

कैसी भई अमरावती की गति,
सो कछु आजु लौं जानि न पाई ।
मातु पै जानै न बीती कहा,
न पुलोमजा कौ हमरी सुधि आई ।
जानती मानसरोवर में दुरचौं,
तौ हू नहीं कुसलात पठाई ।
धीरज जात सबै ही खस्यौ,
वा जयन्त की हीय गुनें लरिकाई ॥

(३८)

मंजु मनोज की देखि बहार,
समाधि लगाय सकैं नहिं जोगी ।
त्यौंही अनन्द उमंग जगे,
पलकानि कौ छाँड़ि उठै लगें रोगी ।
धौल मयंक की देखि कलानि,
कहौ किमि धीरज धारैं बियोगी ।
द्यौसनि कैसे बितावैं भला,
बिसराय तियै हम जैसे सँयोगी ।

(३९)

जोरी मरालनि की तब लौं,
मोतिया चुनिबे तेहि ओर सिधारी ।
जोन्ह में ऐसी मिली तहँ वा,
नहिं ढूँढ़ि हू पावति सो निज प्यारी ।
पै सुनि पैंजनी की झनकारहिं,
हंस भयो तेहि कौ अनुसारी ।
पालतू हैं चले आये इतै,
सुरनायक यौं निज हीय बिचारी ॥

(४०)

खंजन के सँग एऊ सबै,
गिरिनाथ के वा दिसि कौं अबै जाइहैं ।
औ उतै केतिक मास बितायकै,
पावस ही में इतै चले आइहैं ।
जौ इनसों कहि भेजौं सँदेस,
प्रिया ढिग ये निहचै पहुँचाइहैं ।
औ तेहि की निज नैननि सौं,
दयनीय दसा लखिकै कहि जाइहैं ॥

(४१)

यौं गुनि कै मोतियानि की माल कौ,
तोरि दियो तिनकी दिसि डारी ।
सामुहे लाय धरचौ तिनके,
सरसों विष-दण्ड हि आपु उपारी ।
लागे चुनै जबही वै निसंक ह्वै,
लीन्हों तिनै निज अंक बिठारी ।
पालतू हे वै नहीं बिजुकै,
सुरनाथ कौ मोद भयो अति भारी ॥

(४२)

हंस के द्वन्दहिं देखत ही,
अपने दृग ते अँसुवा बरसायो ।
प्रेम - सँदेस पठाइबे कौ,
मघवा अभिलाष कछू दरसायो ।।
सीस हिलायकै राज मराल,
मनौ सिर धारिबै कौ सरसायौ।
सोक - अवेग सौं पै तबहीं,
कछु भाषि सक्यौ न गरो भरि आयौ।।

(४३)

"हौ तुम हंस के बंसिन मैं,
बिधि के बर बाहन आपु सुहाये ।
गौरव रावरो कैसे कहौं,
रहौ सारदा कौ निज पीठि चढ़ाये ।
पानिप सौं पय कौ बिलगाइबो,
त्यौंही सुभाव ही सौं सिखि आये ।
या लगि आप सौं आजु कछू,
बिनती करिबो हमहूँ हिय ठाये ।।

(४४)

संकर नारद सारद सेष,
औ पारद सुक्र सुधारस भीनो ।
चाँदनी चन्दन चाँदी औ चन्द,
सिता सिकता हली हास प्रबीनो ।
केंवरा जाही जुही अरु कैरव,
कुन्द मँदार सरोज नवीनो ।
देवधुनी मुकता अरु संखनि,
माँगि सबै तुम सौं रंग लीनो ।।

(४५)

हौं सबै देवनि को अधिराज,
कुभाग सौं पै निज राज विहाई ।
मातु तिया सुत बंधुनि त्यागि,
बसे तट मानस के हम आई ।
बीति गईं बरसैं कितनी,
तिनकी सुधि पै न अजौं लगि पाई ।
यातैं हमारो सँदेसो सखा !,
बनिता ढिग दीजियो तौ पहुँचाई ।।

(४६)

मोपै मया करि आपु धनी,
अमरावती जैबै जबै मन लैयौ ।
ऊँचे-तुषार - विमंडित - स्रंग सौं,
मारग मैं न कहूँ टकरैयौ ।
त्यौं करि पार पहारनि कौ,
जबहीं बसती के ढिगैं नियरैयौ ।
घूमैं अहेरी लिये सर चाप,
कहूँ तिनको बनि लच्छ न जैयौ ।।

(४७)

सम्भु के हास सौं गौर सरीर !,
मराल उतै सिव सैल ह्वै जाइयो !
लै नभ गंग सौं धोये प्रसूननि,
चंचु सौं ईस के सीस चढ़ाइयो ।
देखैं जबै तुव ओर महेस,
तिन्हैं विष-पान की यादि दिवाइयो ।
और हमारी दसा की कथानि,
सबै गिरिराज-सुताहिं सुनाइयो ।।

(४८)

कीजौ न नेकु निसा बिसराम,
तहाँ सिवसंकर के गन ऐहैं।
सम्भु-लिलार की चन्द छटा महँ,
वै उतै केतिक द्वन्द मचैहैं।
त्यौं तिनके बिकटानन देखि,
सखा! निहचै तुव प्रान सुखैहैं।
मूरति मोहनी रावरी हेरि,
न छाँड़िहैं जो पै कहूँ गहि पैहैं॥

(४९)

या बिधि सम्भु को सैल निहारि,
सखा अलकापुरी को मगु लीजौ।
जच्छ के द्वन्द तहाँ बिहरैं,
तिनकी दिसि भूलिहू दीठि न दीजौ।
भेंटती ह्वैहैं प्रिया पिय कौ,
जिनके रस-रंग में भंग न कीजौ।
लाजनि वै मरिहैं सुर-बाम,
इती बिनती मन मानि पतीजौ॥

(५०)

जच्छ-तिया तहँ कंज-से पायँ,
गुलाब झवानि झवावती ह्वैहैं।
नायनियाँ कर कौल पै धारिकै,
एड़िन जावक लगावती ह्वैहैं।
सौंधे सुगन्धिन केस कलाप,
प्रसूननि ही सौं सजावती ह्वैहैं।
सौसनी सारी सुही तन पै सजे,
नन्दन कौ चली आवती ह्वैहैं॥

(५१)

कोऊ उरोजनि सौं परसो हरा,
प्यारी पियै पहिरावती ह्वैहैं ।
पाय निकुंज मैं कन्त इकन्त,
भुजा भरि कंठ लगावती ह्वैहैं ।
कोऊ बिनोद मिलाप की बातनि,
कानन लागि सुनावती ह्वैहैं ।
बीन गहे कहूँ बाल रसाल,
कुबेर की कीरति गावती ह्वैहैं ॥

(५२)

पै सखा नन्दन - कानन मैं,
बहु बेर लौं प्यारे बिराम न कीजियो।
त्यौं मनि-मानिक-सौं जरी चारु,
बिलौर की ऊँची अटा लखि लीजियो।
हेम की बेलि तुषार हई।
मम भावती कौ लखि आप पतीजियो।
दौरिहैं देखि जयन्त तुम्हें,
तिनको अपने ढिग बैठन दीजियो ॥

(५३)

कै वह सोकपगी निज सासु के,
कंज - से पायँनि ह्वैहै दबावति ।
कै कहि केती पुरानी कथा,
थपकी दै जयन्त कौ ह्वैहै सोआवति ।
कै सखियानि मैं बैठि सची,
बतियानि सौं ह्वैहै हियो बहरावति ।
कै मम चित्र बिलोकि लिख्यौ,
तिया ह्वैहै घने अँसुवा बरसावति ॥

(५४)

वा समै सारद औ करतार कौ,
प्यारे सखा सबिसेष मनाइयौ ।
औ पद सेवन के बदले,
तिनसों बर बोलन कौ तुम पाइयौ ।
यौं सफला निज बानि बनाय,
सची कौ हमारो सँदेस सुनाइयौ ।
कौल - सी कोमल-हीय-तियाहिं,
सबै बिधि धीरज आपु बँधाइयौ ॥

(५५)

"तेरे ही पुन्नि प्रभावनि सौं,
कुसली अबलौं सुनौ बालम तेरे ।
पायौ संदेसौ नहीं तुम्हरौ,
नित याही अँदेसनि सौं रहैं घेरे ।
धीरज धारौ हिये मैं तिया,
औ निरासहि आवन दीजै न नेरे ।
एक न एक दिना सुमुखी !,
सुख के कबहूँ दिन आइहैं मेरे ॥

(५६)

भूलिकै आपु कहूँ जननी—
समुहे जनि लोचन बारि बहैयौ ।
आवै जबै हमरी सुधि तौ,
सबही बिधि सौ तिन्हैं धीर धरैयौ ।
त्यौं मधुरी मधुरी बतियानि,
जयन्त कौ प्यारी सदा बहरैयौ ।
मानियौ यामैं अनैसौ नहीं,
कबहूँ कबौ रम्भहु के घर जैयौ ॥

(५७)

राखियो कोर कृपा की सदा,
परिचारिका है नहिं सौति तुम्हारी।
है ससि औ सुधा की भगिनी,
हरिजू की लगै वह नात मैं सारी।
यौं बड़े बंस की ह्वैकै बिभूति,
कबौ तुमसौं करिहै नहिं रारी।
होन नहीं दुख पावै तियाहिं,
इती बिनती गुनि लीजौ हमारी॥

(५८)

बीतिहैं दुःख के बासर एऊ,
बहोरि प्रिया अमरावती आइहौं।
फूलन की नई मालनि सौं,
अलकावली आपु की आय सजाइहौं।
त्यौं भरि अंक निसंक ह्वै बाम,
सबै तुम्हरे तन ताप बुझाइहौं।
ये बिरहा दिन मैं जे किये,
हियरे के सबै अभिलाष पुराइहौं॥

(५९)

या जग माहिं सुनौ सुमुखी !,
सुख को सदा भाजन होत न कोई।
त्यौं सब जीवन लौ निहचै,
नहीं कोऊ मरै दुख-तापनि रोई।
भाग में लोगनि के पहिले,
लिखि राख्यौ हुतो चतुरानन जोई।
सो मिटिहै नहीं मेटे सची,
बिधि-रेख मृषा न कबौं कहूँ कोई"॥

(६०)

इमि सुरनायक के बिरह-निवेदन कौ,
　　आये राज-हंस वाकी बामहिं सुनायकै ।
अमरावती के समाचार औ सची के सोग,
　　वाही भाँति भाख्यौ त्यों सुरेस ढिग जायकै ।
पायकै तिया की सुधि त्यौंही पाकसासन ने,
　　तिनहिं असीस दीन्हों हिय हरखायकै ।
"जाड़न की यामिनी मैं एहो राजहंस तुम्हें,
　　भामिनी-बियोग जनि घेरै कहूँ आयकै" ।।

अष्टम सर्ग

रोला

(१)

इमि रन सुरन हराय चहुँ फिरवाय दुहाई।
अमरावति मैं विजय-धुजा अपनी फहराई॥
नहुष नृपहिं अभिषेकि सौंपि सुरपति-सिंहासन।
लौटयौ पुनि निज राज प्रबल बलि अरि-दल-नासन॥

(२)

सुनत दूत मुख प्रजा भूप कौ देस पधारन।
लागी सजन समोद सकल स्वागत सम्भारन॥
हाट, बाट, पुर, गली भली बिधि गईं सजाई।
तोरन, धुजा, पताक, कलस बहु भाँति बनाई॥

(३)

जहँ तहँ फाटक रुचिर राज-पथ माँहि बनाये।
अमरावती प्रवेस - द्वार लौं लसत सोहाये॥
सरस राग सौं बजत मंजु तिनपै सहनाई।
सुनि जिनकी धुनि मधुर जात सुरबृन्द सकाई॥

(४)

कुन्तल लायो साजि भूप कौ गज मयमन्ता।
संख बरन कैलास-स्रंग-सुन्दर चौदन्ता॥
मनि मय मंडित जासु पीठ पै परी अँबारी।
तापै चढ़ि बलि अनुज चल्यौ सब लोग अगारी॥

(५)

कंचन स्यंदन साजि हेम किंकिनि बहु जामैं ।
उच्चस्रव-हय जुते लगी मकतूल लगामैं ।।
तेहि रथ पै आसीन लसत बानासुर कैसे ।
गिरनन्दिन को सुवन सोह रन धुर पर जैसे ।।

(६)

धारे दिव्य दुकूल परी उर-गज-मनि-माला ।
सीस बैंजनी पाग प्रभा कलँगी की आला ।।
झूलत कटि करबाल किये अस्वनि असवारी ।
स्वागत बलि को करन सचिव-गन चले पछारी ।।

(७)

ता पाछे असवार चले निज तुरँग नचावत ।
निज कर रुद्र-त्रिसूल-उग्र-भाला चमकावत ।।
पीछे चली पदाति अपर सेवक समुदाई ।
साजे बसन अनूप भूप सों रूप लखाई ।।

(८)

बटु सँग आवत सुक्र बाम कर लकुट सोहावत ।
डगमगात डग धरत पादुका पथ खटकावत ।।
सोहत कटि पटपीत जज्ञ-उपवीत सोहावन ।
राजत भाल त्रिपुण्ड अच्छमाला कर पावन ।।

(९)

कुन्तल गुरुहिं बिलोकि दीन्ह गज कौ बैठारी ।
धरचौ निसैनी पाँयँ सुक्र आचार्य सम्हारी ।।
बैठचौ आसन जाय कह्यौ "गज बेगि चलावौ ।
केतो भयो बिलम्ब नेकु अब बार न लावौ ।।"

(१०)

परयौ निसाननि घाव चले या बिधि अनुरागे ।
बंदि बृन्द बर बदन बंस बिरुदावलि लागे ॥
या बिधि असुर बिरूथ सकल निज साज सजाये ।
बलि को स्वागत करन काज पुर बाहर आये ॥

(११)

उत सब असुर-समूह धरा मंडलहिं कँपावत ।
पूरत चहुँदिस धूरि गगन भयभूरि भरावत ॥
सुनि सुनि जिनकी हाँक बाहु बीरन के फरकत ।
पै धावत पथ छाँड़ि बाजि रबिरथ इमि भरकत ॥

(१२)

रही धूरि नभ पूरि भानु नहिं परत लखाई ।
घरघरान धुनि परी सबै कानन मैं आई ॥
सो सुनि असुर-समूह बिपुल बिसमय भय पागे ।
निज निज दृगनि उठाय गगन दिसि देखन लागे ॥

(१३)

लागे करन बिचार कहा यह आदित आवत ।
पै वाकी गति बक्र अहो समुहे यह धावत ॥
तौ है कहा कृसानु तासु लपटैं अति ऊँची ।
पै यह उतरत अवनि ओर कीन्हें गति नीची ॥

(१४)

तौ लौं गयो बिमान और महि दिसि नियराई ।
अरु घर घर धुनि घोर परी कछु निकट सुनाई ॥
कह्यौ असुर गुरु टेरि लखौ दैतनपति आवत ।
रबि सम धारत तेज बिजै की धुजा उड़ावत ॥

(१५)

"जैतु विरोचननन्द दैत कुल विरद उधारन।
जै कस्यप कुलकेतु' लगे इमि असुर उचारन ।।
आयो अवनि बिमान लिये अस्विनीकुमारन।
संकुसिरा को पानि किये बलि निज कर धारन ।।

(१६)

धरत धरा पग परसि असुर-गुरु-पद-जल-जाता।
प्रेम न हिये समात निरखि निकटहिं लघु-भ्राता ।।
गुरु निज बाहु उठाय परी जामैं अछमाला।
लगे देन असीस प्रेम पुलकित तेहि काला ।।

(१७)

"जौलौं दक्खिन सिन्धु रहैं मनि खण्डनि पूरे।
जौलौं हिम सों ढँके रहैं हिमराज-कँगूरे ।।
जौलौं रवि-ससि-नखत, बहत सुरधुनि जल जौलौं।
कस्यप-कुल-कल-कीर्ति-धुजा फहरै नभ तौलौं ।।"

(१८)

मिल्यौ ललकि लघु-बन्धु सीस बलि पायन राखी।
भुज प्रलम्ब गर डारि अमिय मृदु बैननि भाखी ।।
कह अस्विनीकुमार "गाढ़ भेंटौ जनि याको।
लग्यो कुलिस कौ घाव कहूँ फटि जाय न टाँको ।।"

(१९)

पुनि बानासुर आय पिता-पद-पंकज लाग्यो।
कर गहि सुतहिं उठाय माथ सूँघत अनुराग्यो ।।
बहुरि सचिव-गन निकट जाय नृप कौ सिर नाई।
लगे महीपहिं देन सबै मिलि बिजय-बधाई ।।

(२५)

यह है तारक असुर भिर्‌यौ षटबदन प्रचारी ।
निसित बिसिख बरसाय सकल सुर-सैन बिडारी ।।
याही ने गहि सक्ति सक्ति-धर के हिय मारी ।
मूर्छित सुतहिं बिलोकि भये सोकित त्रिपुरारी ।।

(२६)

यह जम्भासुर लर्‌यौ आपु सुरराज अगारी ।
जरजर कीनो सक्र याहि निज बानन मारी ।।
मार्‌यौ सुरपति बज्र तऊ नहिं साहस छूटे ।
छाती सुर-गजदन्त लगे मूलक सम टूटे ।।

(२७)

यह बिडाल-दृग असुर भूरि बल साहसवारो ।
अलकाधिप सौं लरयौ अमित सुर सैन बिदारो ।।
कोपि चण्ड करबाल धनप याके सिर झारी ।
पै नहिं काहू भाँति धरयौ इन पाँव पछारी ।।

(२८)

या बिधि सबनि सराहि कही सबकी प्रभुताई ।
कीन्हीं कृपा अपार भये रन आय सहाई ।।
रन - खेतन मैं लरे अपर जे दैत्य घनेरे ।
कहौं कहाँ लौं धन्यवाद भाजन सब मेरे ।।"

(२९)

तब बोल्यौ सिरसंकु कहा हमरी प्रभुताई ।
राउर अमित प्रताप दई हम सबन बड़ाई ।।
निज अधिकारन हेतु न्याय-रन कीन्ह प्रचारी ।
याते बिजय बिभूति दीन्ह दैतनि त्रिपुरारी ।।

(३०)

तब बोल्यौ नृप सचिव नाथ! अब देर न कीजै ।
प्रजा-चकोरनि चन्द्र-बदन को दरसन दीजै ।।
जोवत होइहैं बाट बड़े महराज अगारी ।
लोचन पलक न लाइ लखति होइहैं महतारी ।।

(३१)

यह सुनि बाहन चढ़्यौ फिरयौ सब असुर समाजा ।
परत नगारनि चोट बिपुल बाजत बर बाजा ।।
चढ़ी अटारिन नगर नवल अबला अनुरागीं ।
बलि पै मुदित प्रसून लवा बरसावन लागीं ।।

(३२)

सतखण्डनि पै चढ़ीं लसैं बनिता बहुतेरी ।
बरसावति मुसकानि-सुधा-घनसार घनेरी ।।
तिनके आनन-इन्दु मंजु या बिधि छबि छाजैं ।
मानौ बन्दनवारि बँधी अँखियनि की राजैं ।।

(३३)

ज्योंही जयधुनि तुमुल गगन मै गूँजन लागीं ।
सुनि सुनि तजि गृह-काज सकल प्रमदा-गन भागीं ।।
भूप-दरस कौ करि उछाह अतिसै अनुरागीं ।
धाय गवाछनि पास तियागन देखन लागीं ।।

(३४)

हरबराय तिय चली एक दृग अंजन दीन्हें ।
दूजो रंजन काज मसी अँगुरी मँह लीन्हें ।।
गूथत कोऊ रही केस कलियानि सँवारी ।
बेनी लै कर कंज चढ़ी तिय सौध अटारी ।।

(३५)

कोउ निज चरन भँवाय गुलाबनि भाँयनि प्यारी ।
जावक लावत रही सुघर नाइन सुकुमारी ।।
बाजन की धुनि सुनत बाम खिरकी दिस धाईं ।
धवल सु चादर बिछी ताहि अरुनारि बनाई ।।

(३६)

गूँथति मुक्तनि माल रही कोऊ अलबेली ।
'अरी आय किन देखु' कही कोउ चतुर सहेली ।।
बँध्यो अँगूठा ताग तासु की सुधि बिसराई ।
मोतिन की तिय पाँति मही बिथुरावत आई ।।

(३७)

छुटचौ छरा को छोर बाँधिबे की सुधि नाहीं ।
नीबी सिथिल बिलोकि गह्यौ तिय पट कर माहीं ।।
सीसो पग छिदि गयो निकारन ताहि न पाईं ।
पै दौरत लँगरात बाम खिरकी लौं आईं ।।

(३८)

भूपति को लखि बेष कोटि कंदर्प लजावन ।
आयतलोचन बाम लगी तिनको फल पावन ।।
पै लखि दनुज-समाज बिषम बिकटाननधारी ।
बालक भाजे भभरि मानि हिय मैं भय भारी ।।

(३९)

मग लोगनि सुख देत चले इमि भूपति आवत ।
कस्यप-कुल-बिधु-बिजय-धुजा नभ मैं फहरावत ।।
कोऊ पान मग देत कोऊ हिम सीतल पानी ।
कोउ मेलत उर माल कुसल पूँछत मृदु बानी ।।

(४०)

कोऊ सुधा-सम स्वादु प्रपानक लाय पियावत ।
बिबिध मिठाइन लाय मुदित मन सबनि खवावत ।।
कढ़े सराफे आय कौन छबि कहै बखानी ।
मनौं अम्बु-निधि माहिं गयो रहि केवल पानी ।।

(४१)

इमि दिन-मनि के चलत नगर - उद्यानहिं आये ।
मनि-दीपन सौं रहे जासु के बिटप सजाये ।।
तिनको धवल प्रकास पाय छिटकी उजियारी ।
ढूँढे हू नहिं मिलत कतहुँ कैसेहुँ अँधियारी ।।

(४२)

धवल प्रभा के दीप बिमल बिधु को मदहारी ।
मनि-प्रदीप बहु बरैं मनहुँ नखतावलि प्यारी ।।
मुदित महीपहिं देन काज बर - बिजय - बधाई ।
ससि-मण्डल मनु रह्यौ मही-मण्डल नियराई ।।

(४३)

राज-सौध की भीति मढ़ी मनि-दीपनि सोहत ।
स्वागत पाँति - प्रदीप जिन्हैं देखत मन मोहत ।।
बिबिध रंग के चक्र कहूँ मनिगन के राजत ।
कहूँ बरत कहुँ बुझत अमित सोभा इमि छाजत ।।

(४४)

सिंहपौरि पै गयौ जबहिं नरपति अनुरागी ।
मुक्तामनि की होन तहाँ न्योछावरि लागी ।।
परसि बिरोचन - चरन उठ्यौ जबहीं बड़भागी ।
आरति कीन्हीं मातु अमित आनँद उर पागी ।।

(४५)

बिहँसि बिरोचन कह्यौ "रही अब साध न दूजी ।
सत्र ही बिधि सों जाय भुजा बलि की बलि पूजी ।।"
सुनि मुद मंगल बैन थार दासी लै आई ।
पुजवाई बलि बाँह जनक आदेसहिं पाई ।।

(४६)

आनँद हिय न समात उठी रोमनि की राजी ।
आनन - ओप अमंद चंद भाग्यौ नभ लाजी ।।
घूँघुट कछुक हटाय भाय भरि हीय असेषन ।
सुर - बिजयी निज पियहिं लगीं रानी अवरेखन ।।

(४७)

बहुरि सुतहिं उर लाय सीस धरि पंकज पानी ।
बोली सहज सुभाय मातु इमि मंजुलबानी ।।
"कमल सौं कोमल गात कहाँ कुलिसायुध धारे ।
कहौ तात केहि भाँति अरातिन रन संहारे ।।"

(४८)

बिहँसि बदन बलि कह्यौ "चरन अवलम्बन तेरो ।
बहुरि जनक की कृपा अनुग्रह पितरन केरो ।।
कहौ कठिन अस काज कौन तिहुँ लोकन माहीं ।
आयसु पाय पुजाय सकै तेरो सुत नाहीं ।।"

(४९)

इमि सब सुभट - समूह नृपहिं मन्दिर पहुँचाई ।
लौटे निज निज सदन चरन पंकज सिरनाई ।।
सबनि यथा - थल राखि सबै सुख-साम सजाई ।
बानासुर हू फिरचौ राज - मन्दिर हरषाई ।।

(५०)

भोजन कै अति चावसों भूप,
चले निज मन्दिर कौ सुखपाई ।
फेन - सी सेज पै पौढ़े निसंक,
तमोल दिये तिय ने हरखाई ।
पंकज - पाँयन चाँपि महीप के,
बातन ही मैं अनन्द बढ़ाई ।
या बिधि सों नरपाल के नीरज,
नैननि मैं निंदिया नियराई ।।

नवम सर्ग

दोहा

(१)

कौल कली बिकसी निरखि, नखतावलि छबि छीन ।
दीपक प्रभा मलीन लखि, जाग्यौ भूप प्रवीन ।।

(२)

बाजत सहनाई सरस, मधुर भैरवी गाय ।
बिमल बंस - बिरुदावली, चारन रहे सुनाय ।।

(३)

सुनत सूत-सुत-मुख-बचन, उठचो महीपति जागि ।
सुप्रतीक सुनि हंस-रव, गंग-पुलिन जिमि त्यागि ।।

(४)

दिवस-क्रिया करि मुदित मन, सादर पूजि महेस ।
सभा-अयोजन करन कौ, सचिवनि दीन निदेस ।।

(५)

या बिधि अधिकारी सबै, भूपति आयसु पाय ।
यथा-समय निज मंच पै, मुदित बिराजे आय ।।

(६)

तौ लगि सुत सचिवनि सहित, आयो दैत्य - नरेस ।
ज्यौं सुर-गुरु बुधजुत करत, निसिपति गगन प्रबेस ।।

(७)

सोहत हिमगिरि स्रंग ज्यौं, दरपति सिंह-कुमार ।
ज्यौं मयूर की पीठ पै, राजत आपु कुमार ।।

(८)

बिबुध-सभा मधि जिमि लसत, अमरनाथ छबि छाय ।
तिमि निज आसन पै बिहँसि, बलि नृप बैठ्यौ आय ।।

(९)

हलत अरुन - अंसुक कछुक, इमि सोभा सरसाय ।
जिमि सुमेरु के स्रंग पै, दिनपति रह्यौ लखाय ।।

(१०)

देव - उदय - आसा - निसहिं, बिनसत लगी न बार ।
भाग दैतकुल को जग्यौ, औ बलि सुजस अपार ।।

(११)

बन्दि असुर गुरु चरन जुग, कह्यौ भूप सिरनाय ।
"भेंटचों बिजय-बिभूति रन, राउर आसिष पाय ।।

(१२)

जो कृपान बल सौं कहूँ, प्रभुता पाई जाय ।
छीन होत ही तासु बल, सो पल मैं बिनसाय ।।

१३)

धन धरती जब काहु की, कोऊ लेत छिनाय ।
अन्तकाल लौं हीय , वाके जरनि न जाय ।।

(१४)

भुलिहैं कैसे देवगन, बिधि-हरि-सम्भु-सहाय ।
करिहैं वै प्रतिकार कौ, कबहुँ सुअवसर पाय ।।

(१५)

याते गुरु या बिजय तें, मोहि न होत संतोष ।
बदलो धोखे को लियो, बसि इतनो परितोष ।।

(१६)

भावत अब मोकहँ सुनहु, गुरुवर याही रीति ।
जीती धरा कृपान-बल, लेहुँ नीति-बल जीति ।।

(१७)

कीन्हें मख निन्नानवे, अब ही लौ हरषाय ।
रह्यौ सेष अब एक ही, ता कहँ देउ कराय ॥

(१८)

सुरपति - पद पै याहि तें, लहौं अभय अधिकार ।
तथा अरिन को मान-मद, जारि करौं सब छार ॥

(१९)

वा मृनाल की नाल में, सुरपति रह्यौ लुकाय ।
करै नहुष बिपरीत किमि, यहै रह्यौ मन आय ॥

(२०)

याते गुरुवर करि कृपा, दीजै मोहि रजाय ।
अस्वमेध के करन कौ, साज सजावों जाय ॥"

(२१)

कह्यौ सुक्र "नृप तव बचन, है अभिनन्दन जोग ।
सत मख पूरे करि मुदित, करौ इन्द्र-पद-भोग ॥"

(२२)

गुरु तें अभिमत बचन सुनि, हरख्यो हीय नरेस ।
मख - सम्भारनि सजन कौं, सचिवनि दीन निदेस ॥

(२३)

बिमल नरमदा सरि निकट, सोधी भूमि ललाम ।
मख-मण्डल बिरच्यो तहाँ, मयदानव अभिराम ॥

(२४)

नभ में फहरत नृपति की, वह मख-धुजा उतंग ।
उरझत जामै आपकै, दिन-मनि रुचिर तुरंग ॥

(२५)

बहुधा नव - बारिद - पटल, याही सों टकरात ।
जबै वायु वस आय कहुँ, वा दिसि सो कढ़ि जात ॥

(२६)

कै कस्यप-बर-बंस की, बिमल धुजा फहरात।
कै वह बलि-नृप को सुजस, कहन अमरपुर जात॥

(२७)

भेजि चरन कहँ मुनिगन, मख हित लीन बुलाय।
बलिबिन्ध्या सहितैं नृपति, दीच्छा लीन्हीं आय॥

(२८)

अस्वमेध याजन करत, दिज-गन धरम धुरीन।
बलिहिं करावन मख लगे, सादर परम प्रबीन॥

(२९)

प्रथम थापि सिन्धुर-बदन, पुनि नव ग्रहनि बुलाय।
हवन-कुण्ड महँ मुनिन मिलि, अनल दियो प्रगटाय॥

(३०)

सोहत बलिबिन्ध्या सहित, तहँ बलि नृप छबि धाम।
मनहुँ त्रिपुर-अरि बिजय हित, करत जज्ञ रति-काम॥

(३१)

कै श्रीहरि-कमला सहित, कै बिधि-बानी बाम।
कै नगपति-धिय संग लै, सोहत सम्भु निकाम॥

(३२)

कै पुलोम-तनया सहित, राजत आपु सुरेस।
कै रोहिनि निज संग लै, लसत रुचिर नखतेस॥

(३३)

कैधौं भक्ति-बिराग दोउ, कै स्रद्धा अरु ज्ञान
राजत बलिबिन्ध्या-सहित, या बिधि भूप सुजान॥

(३४)

पूजि बिनायक नवग्रहनि, बन्दि असुर-गुरु पायँ।
जबहिं लीन करकंज महँ, नृप साँकलि हरषाय॥

(३५)

फरकन लाग्यो बाम को, दच्छिन भुज अरु नैन।
त्यौं छींकत नृप कौ निरखि, भयो सुक्र बेचैन ॥

(३६)

घेर्‌यौ सबनि बिषाद कछु, बदन-प्रभा भइ मन्द।
ज्यौं रजनी अवसान मैं, छीन - कला - छबि चन्द ॥

(३७)

ज्यौं तुषार सौं बनज-बन, अति बिबरन ह्वै जात।
मखमण्डल की वा समै, तैसिय दसा लखात ॥

(३८)

लखि के सबके मलिन मुख, बोल्यो सुक्र सुजान।
"कहा करन लागे नृपति, या बिधि मनहिं मलान ॥

(३९)

सकल बिघन - बाधानि के, जो सिर राखत पाँयँ।
बर - माला वाके गरे, बिजय बिभूषत आय ॥

(४०)

भूलि चण्ड - बिक्रम गये, तुम अबहीं नरनाह।
सुरगन समर हराय कै, कालि पुजाई बाहँ ॥

(४१)

खाय कुलिस को घाय हिय, नेकु न लाई संक।
लूटि लई अमरावती, करत कछुक भुव बंक ॥

(४२)

सो तुम या बिधि या समै, साहस खोये देत।
कहूँ तुच्छ असगुन जगत, बनत निरासा हेत ॥

(४३)

कह्यौ मंत्र - बल सौं अबहिं, हय-मख देहुँ पुराय।
सुरप - सिंहासन पै तुमहिं, तप-बल देहुँ चढ़ाय ॥

(४४)

कहौ साप दै तुव अरिन, जारि करौं सब छार ।
कहौ दौरि अबहीं गहौं, भावी हूँ के बार ॥

(४५)

कै कर में करबाल गहि, कै निज धनु-सर धारि ।
करौं अस्त बैरिन सबनि, आयुध दिव्य प्रहारि ॥"

(४६)

लखत असुर-गुरु के नृपति, या बिधि रातै नैन ।
चरन परसि अति मोद सों, बोल्यो मंजुल बैन ॥

(४७)

"भागिन सों राउर सरिस, मिले गुरू महराज ।
दैत्य-वंस या लगि भयो, परम समुन्नत आज ॥

(४८)

धरिय धीर गुरुवर अबहिं, हौं नहिं होत निरास ।
राउर सुभ आसिष जबै, रहत सदा मम पास ॥

(४९)

दैत्यबंस कौ सुजस अब, पूरि रहै नभ माहिँ ।
चाप साप को सुनहु गुरु रह्यौ काम कछु नाहिं ॥"

(५०)

कह गुरु "सुत मख करन में नैकु न करिय बिलम्ब ।
स्यामकरन हय पूजिए, भलो करै जगदम्ब ।"

(५१)

हयसाला सों तुरत नृप, स्यामकरन मँगवाय ।
गुरु आयसु सों मुदित मन, ताकहँ पूज्यौ जाय ॥

(५२)

संग चमू चतुरंग दै, बानासुरहिं बुलाय ।
सौंप्यौ तेहि लघु-बन्धु कर, सबै भाँति समुझाय ॥

(५३)

बन्दि असुर-गुरु-चरन जुग परसि जनक के पायँ।
मख-हय करि आगे चल्यौ, बानासुर हरखाय ॥

(५४)

बलि-पुर ते या बिधि चल्यौ, दरपति असुर-समूह।
चतुरानन - मुखते कढ़ें, जथा अमित स्तुति-जूह ॥

(५५)

पूरब, उत्तर, पच्छिम दिसि, अनायास ही जीति।
गमन्यौ हय दच्छिन दिसा, हिय उपजी कछु भीति ॥

(५६)

उठी कनौटी बाजि की, आगे देत न पाँय।
पै बाहक पुचकारिकै, तेहि लै चले लिवाय ॥

(५७)

चलत चलत जन-थान मैं, मख-हय पहुँचो जाय।
कछु सैनिक बलि घोषना, या बिधि रहे सुनाय ॥

(५८)

"दैत्य-बंस-अबतंस बलि, भूपति कौ मख-बाजि।
जो याको पकरै कोऊ, तुरत करै रन साजि ॥"

(५९)

आयो बारिद-नाद संग, वा दिन अछयकुमार।
देखन कौ जनथान कौ, अपनो स्कन्धावार ॥

(६०)

बीरन के बलकत बचन, सुनत भये दृग लाल।
फरकि उठे भुजदण्ड दोउ, बोल्यौ चर सौं बाल ॥

(६१)

"देखौ इनकी मूढ़ता, मारत बढ़ि बढ़ि बात।
नहिं जानत जस जनक को, जो त्रिभुवन बिख्यात ॥

(६२)

देहु अबहिं यहि अस्व कहँ, हय-साला पहुँचाय ।
याहि छुड़ावन को सबै, सोचहिं असुर उपाय ।।

(६३)

लावहु मेरो चण्ड धनु, अरु तुनीर करबाल ।
मैं देखहुँ अरि-दल-बलहिं, बलकि कह्यौ इमि बाल ।।

(६४)

चर लै वा हय कौ गयो, अरु लायो सर चाप ।
निसित बिसिष छोड़न लग्यौ, अछयकुँवर करि दाप ।।

(६५)

दैत चमू चतुरंगिनिहि, पलक माहिं इमि काटि ।
रुण्ड मुण्ड सों बाल नै, दीन्हीं बसुधा पाटि ।।

(६६)

दिग्गज इव चिग्घरत इभ, जिनके कटत भसुंड ।
अरु धरु धरु मारहु कहत, उठि उठि धावत रुंड ।।

(६७)

या बिधि सो निज सैन को, निरदय निधन निहारि ।
रथ चढ़ि बानासुर चल्यौ, सायक चाप सँभारि ।।

(६८)

तौ लगि असुर-समूह सब, नृप-सुत कौ बल पाय ।
चहुँ दिसि अछयकुमार कहँ, घेरि लियो तिन आय ।।

(६९)

तेहि पै निज बीरन निरखि, डारत अस्त्र-सँघात ।
बानासुर तिनसों कह्यौ, कर उठाय यह बात ।।

(७०)

"काल जेठ, रन कुसल तुम, अबै निरो यह बाल ।
तुम हय गज रथ पै चढ़े, यह पदाति बेहाल ।।

(७१)

तुम सब धारत कवच यह, पहिरो दिव्य दुकूल ।
कुलिस कलेवर तुम सबै, पै याको तनु फूल ।।

(७२)

तुम सब मिलि बाँधन चहत, या बालक कौं आज ।
धिक धिक या बल पै तुम्हैं आवत नेकु न लाज ।।"

(७३)

दैतन सौं या बिधि घिरचौ, अछयकुमार निहारि ।
दौरि एक राकस गयौ, जहाँ रह्यौ सक्रारि ।।

(७४)

बोलेउ "इत आयउ हुतो, कोउ नरपति-मख-बाजि ।
अरु ताके पीछे रहे, सुभट - समूह बिराजि ।।

(७५)

क्रोधित अछयकुमार नै, वा हय कौ गहि लीन ।
अरु अकिले तिन सामुहे, महा घोर रन कीन ।।

(७६)

घेरि लियो बालहिं अबै, सकल असुर - समुदाय ।
चलिकै तिन्हैं संहारि प्रभु, लीजै बन्धु छुराय ।।"

(७७)

सुनि चर-मुख अजगुत-बचन, हिये न रंच बिषाद ।
धनु-सर तुरत सँभारि कै, गवन्यो बारिद-नाद ।।

(७८)

सेन साजि चाह्यौ चलन, खरदूषन रन माहिं ।
पै रोक्यौ घननाद कहि, "काम कछू उत नाहिं ।।"

(७९)

यह कहि निज धनु-मेघ सौं, बरसावत सर-धार ।
इन्द्रजीत गरजत चल्यौ, आवत लगी न बार ।।

(८०)

बोल्यो अछयकुमार सौं, "जनि डरपौ हिय बाल ।
आय गयो रनभूमि मैं, दैत्यबंस को काल ॥"

(८१)

अस कहि पुनि पढ़ि मंत्र कौ, मोहन बान चलाय ।
मोहि मोहि असुरन सबनि, महि पै दीन गिराय ॥

(८२)

कह बानासुर "सैनकनि, बृथा करत संहार ।
रथ चढ़ि आवौ बेगि रन, होय हमार तुम्हार ॥"

(८३)

मेघनाद बोल्यौ बिहँसि, "कहा सेन की बात ।
हौं पदाति कीजै सपदि, मोपै अस्त्र अघात ॥

(८४)

सो सुनि बानासुर तुरत, रथ सों महि पै आय ।
'पहिले करौ प्रहार तुम', इमि बोल्यौ मुसकाय ॥

(८५)

तौ लगि रबिरथ बेग सौं, पच्छिम पहुँचो जाय ।
दच्छिन दिसि सों अपर रबि, आवत परचौ लखाय ॥

(८६)

घरघरान धुनि घोर अति, परी दुहुन के कान ।
मेघनाद हरख्यौ निरखि, बानासुर सकुचान ॥

(८७)

पल मारत ही अवनि पै, उतरचौ आय बिमानु ।
दसकन्धर दीस्यो मनहुँ, तपत दूसरो भानु ॥

(८८)

परसि चरन पितु के मुदित, मेघनाद कर जोरि ।
भाख्यो समर-प्रसंग सब, गिरा अमिय रस घोरि ॥

(८९)

"अस्वमेध मख करत है, कोऊ बलि महिपाल ।
हय-रच्छक बनि कै इतै, आयो वाकौ बाल ।।

(९०)

सो मोसौं रन करन की, कहत बात करि रोष ।
आयसु दीजै बीर कौ, करौं समर - परितोष ।।"

(९१)

बिहँसि कह्यौ लंकेस तब, "भई राति अब तात ।
बहुरि इतै रन मंडियो, दोऊ आय प्रभात ।।

(९२)

रन-कौसल दोहून कौ, हौंहूँ लखिहौं आय ।
करौ निसा बिस्राम दोउ, निज निज सिबिरनि जाय ।।"

(९३)

अस कहि दोऊ सुतन कहँ, पुहुप - बिमान चढ़ाय ।
निज कन्धावर को गयो, दसकन्धर हरखाय ।।

(९४)

रबि अथवत लखि पछिम दिसि, दैत्य-चमू पलटाय ।
आयौ अपने सिबिर कौ, बानासुर हरखाय ।।

(९५)

अस्त्र सनाह उतारि कै, करि भोजन बिसराम ।
रन-मंत्रन लाग्यौ करन, निसि बीती एक जाम ।।

(९६)

रबि-रथ-द्रुतगामी बहुरि, पायक एक बुलाय ।
रन को सकल हवाल लिखि, पितु ढिग दीन पठाय ।।

(९७)

बहुरि जाय प्रति सिबिर मँह, देखे सब बर बीर ।
निसि रच्छा सौंप्यौ चरनि, पुनि लौटयौ रन-धीर ।।

(९८)

इत चर लै रन-पत्रिका, बलि पै पहुँच्यौ आय ।
सुनत मुदित मन ताहि नृप, लीन्हों निकट बुलाय ।।

(९९)

दूरिहि तें नृप कँह निरखि, दूत नाय पद माथ ।
दीन्हीं सुत रन - पत्रिका, लीन्हीं कर नर-नाथ ।।

(१००)

यौ रन कौ लहि कै समाचार,
सँतोष महीपति कौ कछु आयो ।
पै अनचीती गुने हिय मैं,
बिसराम न नेकौ धराधिप पायो ।
छींक की त्यौं सुधि कै दहल्यौ,
औ अवेगनि कौ मन माहिं दबायो ।
आहुति देति रह्यौ पहले जिमि,
संक सौं भूरि भरयौ दुचितायो ।।

दशम सर्ग

सवैया

(१)

लोकन की सुख सम्पति काज,
तथा सुरबृन्दनि कौ सुख देन कौ।
दैतन को मथिकै अभिमान,
बिदारि कै त्यों सुर त्रासिनी सैन कौ।
थापन कौ बलि को जस-जूप,
धरा पग तीनि महीप सो लैन कौ।
बामन जू अदिती के सुगर्भ मैं,
आये बिभूषन कस्यप-ऐन कौ॥

(२)

सिथिलाई चढ़ै लगी अंगनि पै,
सरलौं मुख पंकज पै पियराई।
रुचि मृत्तिका खान मैं ह्वोन लगी,
तन छाम मैं औरौं बढ़ी दुबराई।
कुच दोउन के मुख पै बर बाम के,
ऐसी लसी कछु स्यामलताई।
अरबिन्दनि के मनौ कोसनि पै,
भ्रमरावलि की छबि मंजुल छाई॥

(३)

दोहद को दुख बीतत ही,
अँगना अँग अंगनि छाई अभा-सी।
गात बिकास प्रिया कौ भयो,
जगी और ही दीपति दीप-सिखा-सी।
आनन चंद अमंद गही दुति,
बाढ़ी हिये अभिलाषनि रासी।
जीरन-पात गिरे तैं भई,
किसलै जुत सो ललिता लतिका-सी॥

(४)

सुठि सीतल मंद सुगन्ध समीर,
नई प्रमदा सम डोलै लगी।
तिमि देव-नदी भरि भायनि सौं,
सुख-बीचिन मंजु कलोलै लगी।
सुर-पादप की चढ़ि डारनि पै,
वह स्यामा असीसन्हि बोलै लगी।
निज मंजु मँजूषा सिगारनि कौ,
प्रकृती मुद मानिकै खोलै लगी॥

(५)

छायो बसन्त तपोवन मैं,
कुसुमावली बेलिन पै नई राजैं।
त्यौं फल-भारनि सौं नये पादप,
बन्दनिवारनि की छबि छाजैं।
भानु मरीची कढ़ैं तिन मैं परि,
ऐसी अनूप छटानि कौ साजैं।
ज्यौं कृशनागुरु चंदन की,
रचना रुचि भूमि के भाल पै भ्राजैं॥

(६)

सुनिकै सिसु-रोवन की प्रिय बानि,
तिया मन मोद मढ़ावन लागीं।
चहुँ ओर सौं देवनि की बनिता,
जुरि कस्यप के गृह आवन लागीं।
अनुराग सौं भाग भरी ललना,
कल कोकिल कंठ सौं गावन लागीं।
चिरजीवी रहै सिसु लोमस लौं,
सबै बन्दि पुरारि मनावन लागीं॥

(७)

बानी उमा औ रमा सची साथ,
चलीं अदिती कँह देन बधाई।
रोचन, अच्छत औ दधि दूब,
लिये कर कंचन-थार सोहाई।
बानी धरैं सथिया गृह-भीति पै,
सिन्धुजा मोतिन चौक पुराई।
मंगलचार सिवा सजिकै,
गृह-द्वारनि बंदनवारि बँधाई॥

(८)

दृग अंजन रंजन कोऊ करै,
सुठि सीस के बार सँवारै कोऊ।
हरखाय कै गोद मैं लेय कोऊ,
कर-कंजनि मंजु उछारै कोऊ।
मुसकानि पै सुन्दर वा सिसु की,
मनि मानिक सौं मन वारै कोऊ।
लगि जाइ न दीठि कहूँ यहिके,
भरि नैन न बाल निहारै कोऊ॥

(९)

पलना पर पारिकै वा सिसु को,
तिय मन्द ही मन्द झुलावै कोऊ ।
हलरावनि औ दुलरावनि मैं,
अनुराग के रागनि गावै कोऊ ।
पुचकारि कै ताहि हँसाइबे कौ,
चुटकीनि प्रवीन बजावै कोऊ ।
पुनि रोवत जानि कै अंक मैं लै,
अपनो पय बाम पियावै कोऊ ॥

(१०)

दीसै लगीं दँतियाँ दुइ दूध की,
औ जिभिया कबौं काढ़न लागो ।
आरसी मैं प्रतिबिम्ब लखे,
अनुराग अगाध अगाढ़न लागो ।
देवन की दुख-रासि के साथ,
अदेवन कौ सुख दाढ़न लागो ।
कस्यप को सिसु या बिधि सों,
दुतिया के मयंक लौं बाढ़न लागो ॥

(११)

धाय के बैन कहै तुतराय,
सँकेत पै माथ नवावन लागो ।
त्यों अँगुरी गहिकै तिय की,
हरुए हरुए महिं आवन लागो ।
भावन लागो मनै सबके,
सुख कोद चहूँ सरसावन लागो ।
या बिधि बामन बाल नितै,
पितु मातु को मोद मढ़ावन लागो ॥

(१२)

जबै खेलन कौ मुनि-बालन के सँग,
सो बिच कानन जायो करै ।
मतवारे मतंगनि की गहि सुण्डनि,
कौतुक ही वह धायो करै ।
दसनावली कौ गिनै बाघन की,
चढ़िकै तिन्हैं कौहूँ चलायो करै ।
पय पीवत सिंहिनी कौ सिसु खैंचि,
कबौं बल सौं गहि लायो करै ॥

(१३)

कीन्ह्यौं पिता सुत कौ उपवीत,
औ मंत्रनि की बिधि आपु बताई ।
त्यों प्रतिभा की लखे खनि बाल कौ,
विद्या सदासिव आय पढ़ाई ।
साम को गान सिख्यौ सुर सौं,
कविता कौ पढ़्यौ रुचि कै अधिकाई ।
सास्त्र अगाध महोदधि कौ,
तरिबे महँ बामन बार न लाई ॥

(१४)

बीनैं गहैं सुर सुन्दरी त्यों,
कुसुमावली टूटैं मँदारनि दाम की ।
बावरी कोऊ इती बनि जाय,
नहीं रहि जाय तिया कोऊ काम की ।
कैसेहु मानै मनाये नहीं,
बिसरै सुधिहू बुधि यों सुर-बाम की ।
तुंग तरंगैं उटैं हिय-सिन्धु मैं,
गावन लागैं रिचा जबै साम की ॥

(१५)

कजरा दृग एक ही दीन्हें कोऊ,
कोऊ केस-कलाप सजावत आवै ।
पग एक ही मैं कोऊ जावक दै,
बसुधा अरुनारी बनावत आवै ।
गयो छोर छरा कौ हिराय कहूँ,
तिया सारी सुरंग दबावत आवै ।
कर-कंज में तागरी टूटी लिये,
मोतिया महि पै बगरावत आवै ॥

(१६)

सोंचो करै मन ही मन मातु,
बिषाद की रेख न पै मुख लावत ।
देव-पराभव के परिताप,
अवाँ सम बाम कौ हीय जरावत ।
पूँछे जबैं सुत कारन कौ,
तेहि बातन मैं हँसिकै बहरावत ।
वामन के समुहे कबौं इन्द्र-
पराजय की चरचा न चलावत ॥

(१७)

पौढ़ि रही सुत के सँग मातु,
गई रतिया तऊ आँखि न लागी ।
सोंचत ही सुरनायक की,
बिपदा कौ तिया सिगरी निसि जागी ।
मातु को आयो हियो भरि सोक सों,
लागी कहै बतियाँ दुख पागी ।
सो सुनि बामन की निंदिया,
तजि लोचन कौ तुरतै कहूँ भागी ॥

(१८)

अँखियाँ खुली बालक की लखिकै,
तेहि मातु लगी कर फेरि सुआवन।
हियरा कौ अबेग दबायकै कैसेहु,
बातन ही मैं लगी बहरावन।
बहिकै अँसुवानि की धार तऊ,
सबै हीतल कौ लगी भेद बतावन।
जननी-मुखचन्द्र मलीन लखे,
सहसा तब बोलि उठे इमि बावन।।

(१९)

"कारन याकौ कहौ न कछू,
निसि मैं तुम्हें आजु जो नींद न आई।
कौन धौं अंग मैं ब्यापी बिथा,
पट गीलो कियो अँसुआ बरसाई।
जागत हौं ही रह्यौ कब को.
बतियाँ हू सुनी कछू याद ना आई।
आपने सोग को कारन मातु !
मया करि मोपै कहौ समुझाई।।

(२०

जौ लगि हे जननी ! तव दुःख को,
हेतु जथारथ जानि न लैहौं।
कौनहू भाँति कहाँ लौं कहौं,
हिय मैं कहूँ नैसुक चैन न पैहौं।
काज करै नहिं दैहौं कछू,
पलका तैं तुम्हैं उठि जान न दैहौं।
सौंह बबा की तिहारी करौं,
तब लौं मुख नैकहू अन्न न खैहौं।।

(२१)

पूत कौ या बिधि सौं अनुरोध,
लखे जननी हिय मैं हरखानी ।
पै सुत सामुहे सो सहसा,
न बखानि सकी करुना की कहानी ।
आयो गरो भरि अम्बुज-सी-
अँखियानि बह्यो तरराय कै पानी ।
ही कौ अवेग दबाय सबै,
निज सूनु सों मातु कही मृदु बानी ॥

(२२)

"हे सुत ! रावरो आनन हेरि,
रहीं अबलौं हम सोक भुलाये ।
बाड़व-सी वह दुःख की आगि,
रही हिय कन्दरा माहिं दबाये ।
भूलि हू नाहीं कबौ तुम्हरे,
समुहे हम लोचन बारि बहाये ।
पै दृढ़ सौंह सुने तुम्हरी,
अब कैसेहु बात बनै न बनाये ॥

(२३)

वा जननी के हिये की बिथा,
इमि लालन ! पूछत हौ हठ धारे ।
जासु के सूनु-सरोज-बनै,
अरि कै अरिनै करि लौं मथि डारे ।
है सुत-सोक के सिन्धु परी,
बहियाँ गहिकै तेहि कौन उबारै ।
आस कै राखी किती तुम सों,
पै अहौ तुम हूँ अबैं बालक बारे ॥"

(२४)

"कैसे परी सुत-सोक के सिन्धु,
जो बामन जीवत बाल है तेरो ।
है लघु बालक पै कबौं, तेज-
निधाननि को बय जात न हेरो ।
एक ही सोम-कला सों लखौ,
सिगरो तम-तोम हटै जग केरो ।
का तुव सत्रु-समूह बिनास,
सकै करि क्रोध कृसानु न मेरो ।।"

(२५)

धीरज लाय हिये मँह मातु,
कह्यौ सुत सौं भरि नैननि बारी ।
बीतीं नहीं बरसैं तुव बन्धु,
रह्यौ अमरावती कौ अधिकारी ।
माल सों जाके अदेसनि कौ,
सबै देव रहे निज सीस पै धारी ।
और कहा कहौं जासु सनेह कौ,
मानत आपु रहे त्रिपुरारी ।।

(२६)

अमरावती के बर बैभव की कथा,
हे सुत ! मौपै बताय न आवत ।
कुटिया में रहौं परी तोहि लिये,
सो बतावत मोंहि सकोच है आवत ।
तुम्हरे अनुरोध कौ मानिकै पूत !
न चाहै जियो तऊ तोंहि सुनावत ।
हतभागिनी मातु को कीजौ छमा,
अबलौं रही सारो प्रसंग दुरावत ।

(२७)

तुम्हरे पितु की रही दूजी तिया दिति,
जाके तनै अतिसै बल-धारी।
फिरवाय दुहाई दई जगमाहिं,
नरायन कौ रन माँहि प्रचारी।
बर बन्धु तुम्हारे लरे तिनसौं,
पै गये छन माहिं सबै बिधि हारी।
वह दैतनि की चतुरंग चमू,
अमरावती लूटन कौ पगुधारी॥

(२८)

हौं हू हुती अमरावती वा दिन,
देवन की दुरभागि ही जागी।
आवन दैत - चमू कौ सुने,
अबलानि की वा निसि आँखि न लागी।
कारो पटम्बर जौ लौं समेटि कै,
ह्वै भयभीत बिभावरी भागी।
तौ लगि दैतनि बाहिनी कोपि,
लगाय दई दिसि पूरब आगी॥

(२९)

पै नहीं ज्वाल की माला बढ़ीं,
गुनि कै कहूँ पूरब नेह घनेरो।
कै करि छोभ तियागन पै,
अथवा लै सँकेत जलाधिप केरो।
या बिधि सौं जबै आसुरी सैन ने,
आपने व्यर्थ प्रयास कौ हेरो।
मत्त-मतंगज-कुम्भ की चोट सों,
तोरि कपाट दियो पुर केरो॥

(३०)

जमधार-सी आवत सैन निहारि,
भईं भयभीत तिया बिलखानी ।
निज अंक सिसून कौ लै गमनी,
किती अंतर-गेह मैं जाय लुकानी ।
किती नन्दन कानन भागि गईं,
मति मूढ़ भईं किती गैल भुलानी ।
तिन रूँधि दियो जल-मारग कौ,
रहि याते गयो अँखियानि मैं पानी ।।

(३१)

काल की मूरति वा रदवक्र कौ,
देख्यों प्रचण्ड त्रिसूल घुमावत ।
बारिद - नाद कै बार ही बार,
धरा कौ चलै बरबंड नवावत ।
कंदरा सौ मुख बाये कढ़े रद,
खड्ग-सी वा रसना लपकावत ।
चन्द्र ग्रसै जिमि राहु चलै,
तिमि सौध के द्वार लख्यौ तेहि आवत ।।

(३२)

एक ही चण्ड गदा के प्रहार सौं,
सो सठ सौध-कपाट को तोरी ।
त्यौं सुरचाप सी तोरन-द्वार की,
बन्दनिवारनि कौ झकझोरी ।
आय भयो अँगना मैं खड़ो,
मनि-खम्भनि सौं सिर आपनो फोरी।
वा सम केतिक दैत लखें,
घबराय गई सहसा मति मोरी ।।

(३३)

चारु दुकूलनि त्यागि सची,
तन पै पहरी एक कारिये सारी ।
कंकन किंकिनी नुपुर औ-
पदकंज सौं पैंजनियानि उतारी ।
दासिन में दुरि के भगी बाम,
जयन्त पै कातर दीठि कौ डारी ।
धीरज नेकौ न धारि सकी,
अमरावती-नाथ सुरेस की नारी ।

(३४)

कान कै बाल चला-चली की धुनि,
त्यागि दियो तुरतै तिन सोवन ।
बैठि गयो सिजिया पै ससंक ह्वै,
मूक लौं लाग्यौ इतै-उतै जोवन ।
"मइया गई कहाँ" यों कहिकै,
दृग-बारि सौं लाग्यो कपोलनि धोवन।
हारी मनाय न मान्यौ कछू,
बिलखाय लग्यौ हिचकीनि लै रोवन ।।

(३५)

सौध पै आवत दैतन कौ सुनि,
साहस ही कौ चल्यौ मनो त्यागी ।
त्यौं अबला घबराय बिहाल ह्वै,
चेतनाहीन परी भयपागी ।
मोहिं न सूझ्यौ उपाय कोऊ,
तहाँ पीपर-पात लौं काँपन लागी ।
ता समै हीय पै पाहन पारि,
जयन्त को गोद लिये लिये भागी ।।

(३६)

दौरत दौरत या बिधि सौं सुत !,

हाँफि गई उतरे ते अटारी।

धायहू धाय कै आय गईं,

"जननी जननी" किती बार पुकारी।

सो सुनि लौटि परयो रदवक्र,

पै मोहिं गई कछु दूरि निहारी।

घूमि प्रसून सौं सूनु पै कोपि,

चलाइ दई खल खैंचि कटारी॥

(३७)

ब्यालिनी-सी तेहि आवत देखिकै,

ऐसी कछूक गई घबराई।

त्यागि कै दूजी दिसा भगिबो,

भ्रमि भूलि के तासु के सामुहे आई।

पै अब बालै बचावन कौ,

अपनो दियो दाहिनो हाथ बढ़ाई।

मूठि लौं वा निरदै की कटार,

सो हाय गई कर माँहि समाई॥

(३८)

घूमि गईं अँखियाँ बह्यौ सोनित,

ह्वै कै अचेत परी महि माँही।

सींचन कौ जल पै न मिल्यौ,

अबलानि दियो करि अंचल छाँहीं।

बाढ़ै बिथा या कथा कहतै सुत,

याते सँछेप कहौं तोहिं पाहीं।

पूरि गयौ तन कौ वह घाव,

पै घाव भरयौ मन कौ अबै नाहीं॥

(३९)

जा समै सूनु ! पुलोमजा सोर सौं,
दासिन के सँग मैं दुरि भागी।
दीप-सिखा-सी प्रभा तनु बाम की,
वा पट स्याम मैं और ह्व जागी।
आनन सोम सौं पै न दुरयौ,
चली भीर मलिन्दनि की अनुरागी।
त्यौंही मँदारनि की कलिका,
अलकावली सौं बिथुरै महि लागी॥

(४०)

आँगुरी सौं गिरी सो मुँदरी,
रह्यौ जा महँ अंकित नाम सुरेस कौ।
ताहि लई इक दैत उठाय,—
औ धाय लै जाय दई असुरेस कौ।
सो हरख्यो हिये बाँचि कै नाम,
प्रमोद भरे तेहि दीन निदेस कौ।
धाय धरौ वह बाम सुरेस की,
भागि न जाय लखौ तिय वेष कौ॥

(४१)

स्वामि की आयसु कौ धरि सीस,
चल्यौ सो सुरारि करी नहिं दाया।
धाय धरी दुखिया सची कौ,
लखिकै बर बाम की कंचन काया।
दासी सबै भहराय भगीं,
अवलोकहु वा दुरदैव की माया।
दैतन के बस मैं परी जाय,
पुलोम की जाई सुरेस की जाया॥

(४२)

लै गयौ मोहि पुलोमजा-संग,
दिखावत दैंत बड़ी बड़ी आँखी ।
त्रासत जात जयन्त कौ मूढ़,
किते कटु बैननि कौ मुख भाखी ।
मारग में मिले नारद आय,
निषेध कियो तिनने मन माखी ।
त्यौं तिनको इमि आयसु मानि,
बृहस्पति के गृह में हमें राखी ॥

(४३)

कैसे कहौं बिपदा सुरनाथ की,
राज ही छूटि गयौ जिहि केरो ।
औ तेहि के सँग का कहौं सूनु !
गयो लुटि हाय सबै सुख मेरो ।
देव अदेव सौं पूजन जोग,
हहा भटकै बन बन्धु सो तेरो ।
द्यौस के ज्यौं अवसान भये,
बिछुरो खग ढूँढ़त साँझ बसेरो ॥

(४४)

जा पद-पंकज पै परिबे कौ,
सबै दिगपाल महेस मनावत ।
जासु के भौंह मरोरत ही,
वै प्रलै के पयोद घने घिरि आवत ।
दैतन कौ भय मानिकै ताहि,
न हाय कोऊ गृह माहि छिपावत ।
भाग की वा करतूति लखौ,
नाहिं जानैं कहाँ परो द्यौस बितावत ॥

(४५)

फेन - सी सेज पै पौढ़ि समोद,
    बिभावरी जो नित सोय बितावत ।
प्रात ही जाहि प्रबोधन काज,
    अनन्द सौं किन्नर बीन बजावत ।
जा बर बंस प्रसंसिबै कौ,
    विरुदावली चारन चाय सों गावत ।
सो मही सोय सिवा के बिलापनि,
    हाय सुने निंदियाहि भगावत ।

(४६)

जा पद-पीठ पै भामिनी-मौलि,
    मँदारनि की परै धूरि अथोरी ।
त्यौं - सुर - सीस - किरीट प्रभा,
    नख की प्रभा सौं उरभै बरजोरी ।
सो सुत हाय पयादहिं पाँय,
    फिरै बन मैं निज गात सिकोरी ।
तापस और कुरंगनि नै,
    मिलि कै लई जासु कुसानि कौ तोरी ।।

(४७)

तौपै लगाइ कै आस खरी सुत !
    आजु लौं जीवन कौ रही धारी ।
औ पद सेवन कौ तुम्हरे—
    पितु के बिरधापन तासु बिचारी ।
देखिबे कौ अब हैं धौं कहा,
    दुरदैव गयो सुधि भूलि हमारी ।
फाटै नहीं वसुधा न समाउँ,
    सुरेस सौं बालक मैं महतारी ।।

(४८)

हैं बड़े बन्धु बिहंगमराज—
तेऊ तेहि अवसर काम न आये ।
त्यौं हरि कौ मुखिया करिकै,
निज बंस कौ बैर न आपु मिटाये ।
बन्धुन कौ समुझायौ नहीं,
रन के न बुरे परिनाम जताये ।
भाग ही जो पै भयो बिपरीत,
तो कैसे बनै कोऊ बात बनाये ।।

(४९)

श्री सिवसंकर हैं भगिनी-पति,
दच्छ प्रजापति हैं पितु मेरे ।
हैं हरि सौति - तनै के सखा,
चतुरानन राखत नेह घनेरे ।
ज्ञान निगूढ़ बिचारिबे कौ,
मुनि-मंडली तो पितु कौ रहै घेरे ।
पै इमि बंस-बिरोध बढ़े,
समुझावन कोउ न आवत नेरे ।।"

(५०)

यौं कहि कै अदिती भई मौन,
लगी दृग सौं अँसुआ बरसावन ।
औ तेहि धार में आपने पूत को,
धीरज हू लगी बाम बहावन ।
रोकि अबेग खरौ हिय को,
बरुनीनि मैं लोचन बारि कौ आवन ।
मातु को बेगि प्रबोधन काज,
कहै लगे मंजुल बैन यौं बावन ।।

(५१)

"हे जननी ! कोऊ या जग माँहि,
बिधान सकै बिधि कौ नहीं टारी ।
या लगि दैतनि के समुहे,
रन-भूमि मैं हारि गयो असुरारी ।
काल कुचाल की चालनि कौ,
तनि तौ मन लीजिए आपु बिचारी ।
रोकतो कौन तिन्हैं रन मैं,
जे पहारनि के दिये पंख बिदारी ।।

(५२)

गति रावरी मातु सुरेस के साथ,
अबाध हुती पहले हू उतै ।
निहचै सुर-बृन्द-बिजै सौं बहोरि,
सो होयगी काल कछूक बितै ।
रथ-चक्र के नेमि फिरै तर ऊपर,
ज्यौं मग मैं चलिबे के हितै ।
क्रम काल कौ लै जग त्यौं नर की,
फिरिबो करै भाग की रेखा नितै ।।

(५३)

कादर मातु न जानिए मोहिं,
न दैतन कौ लखिकै हिय हारौं ।
आयसु होय तौ जाय अबै,
असुराधिप कौ रन माहि प्रचारौं ।
त्यौंहो बड़े बड़े दैतन के,
गहि के अबही कहौं सीस उपारौं ।
कै निज क्रोध-कृसानु मैं आजु,
जराय कै छार तिन्हैं करि डारौं ।।

(५४)

तोरि धरौं दिगदन्तिन-दन्त,
कहौ भुज ठोकि सुमेर हलाऊँ ।
सारे सुरारि-समूहनि कौ,
अबहीं रन-अंगन मैं बिचलाऊँ ।
रावरो आयसु पाऊँ जु पै,
बपुरा बलि कौ अबै बाँधि लै आऊँ ।
जौ न करो इतो कारज तौ,
तोहि लौटि न आनन मातु दिखाऊँ ॥"

(५५)

बामन के सुनिके इमि बैन,
कछू अदिती मन मैं सकुचानी ।
है यह ईस को अंस बिसेष,
सबै कछु सो करिहै इमि जानी ।
पै गुनि बंस-बिनास की बात,
तिया अपने मन माँहि लजानी ।
त्यागिकै रोष अबेग सबै,
सुत सौं इमि बोली गिरा रस-सानी ।'

(५६)

"धन्य भई जगती - तल मैं,
प्रिय बामन ! तो सौं सपूतहिं जायकै
कीजिए बंस - बिरोध नहीं,
तिन पै न बजागिनि डारौ रिसायकै ।
बैरी भयै तौ कहाँ भये लालन,
जो जनमें तुम्हरे कुल आयकै ।
लीजै कलंक न बंस-बिनास कौ,
वा पितु के लघु पूत कहायकै ॥

(६०)

सुनत अदिति-बैन पावन परम लागे,
बामन कहन होत प्रात ही सिधैहौं मैं।
मानि तव आयसु बिसारि सब बैरभाव,
मातु ! बलिराज पै अवसि चलि जैहौं मैं।
जो पै होत भावतो न देखिहौं तिहारो अम्ब !
बाँधि दैत नृपहिं तिहारी सौंह लैहौं मैं।
दैहौं दुख दाव दरि सब असुरारिन के,
कस्यप को तबहिं सपूत कहवैहौं मैं ॥

एकादश सर्ग

रूपमाला

(१)

गन्धवाहन सीत मन्द सुगन्ध गति सौं आय ।
बहन लाग्यो गगन पथ मैं नवल छबि सरसाय ।।
त्यौं जटित नखतावली सौं स्याम पटहिं सँभारि ।
भौन गौनी जामिनी नव कामिनी अनुहारि ।।

(२)

गगन-गंगा को सरोरुह लग्यो कछु सकुचान ।
भामिनी ज्यौं देखिकै निज सौति की मुसकान ।।
निरखि सिन्दूर-बिन्दु कौ प्राची दिसा के भाल ।
परौ पीरौ सोक सों ससि कोप सों पुनि लाल ।।

(३)

तोरि डारीं रोष सों मुकतानि की हिय माल ।
ते परीं महि आयकै मिसु ओस-सीकर-जाल ।।
लसत ये अथवा परे कोउ प्रोषिता के आँसु ।
अवधि बीते हू न आयो दूरि सौं प्रिय जासु ।।

(४)

हेमकूट - किरीट हू पै धारि जो निज पाँय ।
सिन्धुजा - पति - धाम-मध्यम माँहि पहुँचो जाय ।।
गिरत ह्वै छवि छीन विधु नभ सों कहत जनु जात ।
अथिर है बैभव जगत कौ छिनक मै बिनसात ।।

(५)

उदित प्राची दिसि दिवाकर अस्त भौ निसिराज ।
बिसद-घंटा-युत-दुरद-छबि धरत जनु नग आज ।।
किधौं बीचिन काढ़ि बाड़व अंबु-निधि तें दीन ।
दिग-बधू कर - रजु - कनक-घट सिन्धु सौं भरि लीन ।।

(६)

निसा-बिरहिन-नलिन-नैननि-आँसु पोंछन काज ।
अरुन इमि प्राची दिसा मैं लस्यौ नव दिन-राज ।।
तासु मारग घन-पटल मधि जबहिं रोकत आय ।
होत रातो जनु हिये निज रोष को दरसाय ।।

(७)

चली चकई पिय मिलन कौ अति उछाह बढ़ाय ।
बिहग-गन कल कूजि चहुँ दिसि रहे गान सुनाय ।।
दुख्यो संजोगिन हियो; प्राची दिसा तेहि काल ।
पियो बिरहिन को रुधिर याते कियो मुख लाल ।।

(८)

सरद-चंद-मरीचि-रोचिष जटा-पटलनि धारि ।
तड़ित-मंडित-अम्बु-बाहन की मनौ अनुहारि ।।
लोक - उत्तर - देह - आभा अमित - तेज - निकाय ।
अपरिचित तपसिनहु के हिय रह्यो प्रेम जगाय ।।

(९)

अतिहि सरल स्वभाव सौं बिसवास जनु उपजाय ।
हरत हीय मुनीन को निज मधुर बैन सुनाय ।।
लसत तहँ मुनि-मण्डली-मधि-सक्रपितु यहि भाँति ।
घेरि मानहुँ सीतकर कौ रही नखतनि पाँति ।।

(१०)

बदिका पै लसत मुनिवर हरिन-अजिन बिछाय ।
स्रङ्ग पै कैलास के सोहत मनौ हर आय ॥
कै लसत पन्नग-दुवन के पीठ हरि पग धारि ।
पद्म पै जिमि पद्म-आसन पद्मआसन मारि ॥

(११)

जायकै पितु निकट बामन प्रनतभाव दिखाय ।
बाल-इन्दु-लिलार अपनो जनक के पद नाय ॥
पाय तासु असीस अरु संकेत को हरखाय ।
बिछी खाल कुरंग की तेहि पै बिराजो जाय ॥

(१२)

पुनि सनाल सरोज सो दोऊ करनि कौ जोरि ।
कहन लाग्यो बैन पितु सौं अमिय रस मैं घोरि ॥
"बाल की बाचालता गुरु सामुहे अपमान ।
बिस्व जिनके हेतु कर-गत-बदर को उपमान ॥

(१३)

तऊ जननी की बिथा अब बिबस मोंहि बनाय ।
कहत बरबस रावरे ढिग इमि निवेदौ आय ॥
दीन्ह मातु अदेस मो कहँ अबहिं बलि पै जाय ।
सन्धि बन्धुनि मैं करावौं असुरगन समुझाय ॥

(१४)

परत निसि नहिं नींद मातुहिं बंस-बैर बिचारि ।
रहति सर-सफरी सरिस, गौ सूखि जाको बारि ॥
तासु को मुख मलिन लखिकै मोहि न आवत चैन ।
सकौं कैसे मेटि बिपदा जतन कोउ बनै न ॥

(१५)

भयो दच्छ प्रजेस निसिपति फिरत नभ निःसंक।
कहहु यहि जग राजमद ने केहि ने दीन कलंक॥
कठिन अतिसै होत है जग राज को मद तात।
प्रबल बलि केहिं भाँति करिहैं संधि की अब बात॥

(१६)

छाँड़ि हैं अमरावती क्यों सक्र कौ पद पाय।
नहुष कबहूँ अंक-गत-कमलाहिं सकत बिहाय॥
इन्द्र-आसन-तजन की अब बात तौ है दूरि।
सची सौं वह चहत सेवा यौं रह्यौ मद पूरि॥

(१७)

जीति रन बल-दर्प सौं ते करत जो मन माँहिं।
कानि काहू भाँति अब हैं दैत मानत नाहिं॥
दीजिए मोकों मया करि सोइ मार्ग बताय।
जासु पै पग धरत ही मम मातु को दुख जाय"॥

(१८)

कह्यौ कस्यप "है अपूरब जगत को व्यापार।
फँसत यामें लोग जे ते परत मनु सरिधार॥
आजु लौं कोऊ गृही यहि गयो पैरि न पार।
त्यागि बैठचों गेह कौ तौऊ नहीं निस्तार॥

(१९)

चहत जे बर बिभव कीरति और सुजस अपार।
करैं ते परिजननि के प्रति सदा सम व्यवहार॥
रहत याको ध्यान पै मुनि जन हिये सबिसेखि।
होत दैतनि पै दया सुरगन कुटिलता देखि॥

(२०)

लरत आपुस में रहत मम सुअन भुअन निकाय ।
सुरन के बनि जात बिधि-हरि-हरहु आय सहाय ॥
कूट नैपटु देव, जानत असुर नहिं छल छन्द ।
बिपुल बल तन माहिं तौहूँ बुद्धि है कछु मन्द ॥

(२१)

युद्ध है यह बुधि अबुधि को बल अबल को नाहिं ।
बिजय पावत बुद्धि जाके है अमित हिय माहिं ॥
जदपि दैहिक सक्ति बहुधा बिजय कौ लहि जात ।
बुद्धि-बल की पै बिदित है और ही कोउ बात ॥

(२२)

कूट-नीतिहिं पालि तिन मिलि सिन्धु-मंथन कीन्ह ।
लाभ को सम भाग देवन नाहिं असुरन दीन्ह ॥
लियो श्रीमनि औ रमा कौ आपु श्री भगवान ।
अस्व, गज, तरु, धेनु, रम्भै, गह्यो सक्र सुजान ॥

(२३)

हरिहु या दुरनीति मैं परि सुरन कीन सहाय ।
बारुनी दै असुरगन कौ सुरनि अमिय पियाय ॥
अधिक स्रम कै, छतिहु सहि, नहिं लह्यो फल को भाग ।
लरैं जो पै कोपि या मैं कहा उनकी लाग ॥

(२४)

तुमहुँ सुत ! अबलानि की सुनि करत उन पै रोष ।
नेकु तौ सोचौ करो उन है कितो संतोष ॥
पै कहत तुम करत वे अब नितहिं अत्याचार ।
याहि सुनि मो हीय आवत नयो एक बिचार ॥

(२५)

अबहिं उनकी बिजय है यह कालिह की-सी बात ।
अबहिं ते वै करन लागे हैं इतो उतपात ।।
कुटिल जन पै कितहुँ कैसेहु सम्पदा चलि जाय ।
तबहि तासु बिभूति वाके मदहिं देत बढ़ाय ।।

(२६)

मान-मद-पूरित - नरेसहिं मूढ़ता गहि लेत ।
मूढ़ नरपति कौ तुरत बर नीति है तजि देत ।।
नीतिहीन महीप सों नहिं प्रजा राखत हेत ।
तथा संकट - समै वाको साथ कबहुँ न देत ।।

(२७)

जथा झंझावात को इक प्रबल झोंको खाय ।
मूल अति दृग बिटपहू को सिथिल ह्वै हलि जाय ।।
सिथिल जाके सचिव सों नृप अवसि ही नसि जाय ।
धारिकै तरवारि चाहै कोटि करै उपाय ।।

(२८)

जबहिं सचिवन माहिं कौहूँ बढ़त द्वेष-दवारि ।
अखिल-नृप-कुल-बनहिं या बिधि तुरत डारत जारि ।।
कुमति नरपति के कुलहिं सुत नसत लगत न बार ।
बंस - मूलहिं काटिबै कौ कुमति है तरवार ।।

(२९)

सुर-पराजय सुनत मोकौ भई जेती पीर ।
पतनसील बिलोकि असुरन होत उतो अधीर ।।
जाय याते दुहन कौ सुत देहु तुम समुझाय ।
बाँधि अथवा नीति-बल सौं बलिहु देउ गिराय ।।"

(३०)

सुनत पितु के बैन सुरतरु - सुमन सौं सुख-ऐन ।
तुरत बिकसे लाल के राजीव - आयत - नैन ।।
प्रनति अति दरसाय अरु पुनि नाय पितु पदभाल ।
मधुर मंजुल बानि सों इमि कहन लाग्यो बाल ।।

(३१)

"धारि राउर सीष और असीस कौ सिर तात ।
अब प्रबल बलिराज कौ हौं सपदि बंचन जात ।।
ह्वै विमाता-तनय मेरो जदपि लागत भ्रात ।
तदपि दुरनय तात ! उनकौ अब सह्यो नहिं जात ।।

(३२)

"लखी जिन अमरावती की लूटि कौ भरि आँखि ।
कहत हौं तिन असुरबृन्दनि कौ सबै करि साखि ।।
लखैं ते बलि को गिरायो नृपति - पद सौं आज ।
सिखर ते डारैं यथा गजराज को मृगराज ।।"

(३३)

भाखि बलकत बचन या बिधि लागि पितु के पाँय।
बंदिकै मुनि-मंडली कौ तासु आसिष पाय ।।
चले बामन मुदित मन अभिलाष अमित बढ़ाय ।
बाँधि हौं बलिराज कौ निज नीति बल सौं जाय ।।

(३४)

कर कमंडलु और पीपल - दंड औ मृगचर्म ।
धरे तपहित जात बन को मनहुँ सात्विक धर्म ।।
किये बटु को बेष बिद्या पढ़न मैं धरि नेह ।
मनहुँ मनमथ जात प्रमुदित आपु सुर-गुरु-गेह ।।

(३५)

बिमल भाल त्रिपुंड बिलसत सकल सोभा - खानि ।
मनहुँ सुरसरि जमुन सरसुति बहीं महि पै आनि ।।
किधौं बिधि हरि सम्भु कौ यह सोह अमल अभास ।
किधौं सत, रज, तम त्रिगुन कौ लसत मंजु उजास ।।

(३६)

है बदन यह इन्दु कै अरबिन्द यौं भ्रम होत ।
दिवस मैं कहुँ निसाकर कौ सुनो पै न उदोत ।।
औ निसा मैं निज पटल अरबिन्द खोलत नाहिं ।
दिवस निसि यह रहत बिकसित का कहौं यहि काहिं ।।

(३७)

इन्दु की उपमा सबै बिधि जाति याते हारि ।
कमल के सम याहि याते कहत कछुक बिचारि ।।
बसत या मैं आपु ही परतच्छ बीना - पानि ।
सुमिरतै कबि-उर-अजिर मैं तुरत नाचति आनि ।।

(३८)

बच्छ - थल पै लसत सुन्दर चारु चन्दन-पंक ।
मनहुँ हरि-उर में लग्यो है सुभग भृगु-पद-अंक ।।
जुगुल चरन सरोज की नहिं कही सोभा जाय ।
भक्ति-जन मुनि-मन-मधुप जेहि माहि रहत लुभाय ।।

(३९)

चारु पद - नख की छटा पै वारिये सत चन्द ।
जाहि लखिकै होत दिनकर की प्रभा हू मन्द ।।
जासु-पद-छालन-सलिल बिधि भरि कमंडलु लीन ।
बुन्द दै इक लोक तीनिहुँ को भलो इमि कीन ।।

(४०)

लिये सुर-सरि-सलिल-कन मग बहत मन्दहि बात ।
हरत पथश्रम बाल को या मिसु मनो सो जात ॥
परसि पद पंकज मही अपनो सराहत भाग ।
करत छाया गगन घनगन प्रगटि निज अनुराग ॥

(४१)

करत मरमर पात मानहुँ गाय प्रभु गुन जूह ।
चरन पूजत बिटपगन बरसाय सुमन - समूह ॥
प्रभुहिं भेंटन को पसारत लता मंजुल बाहु ।
पाय दरसन मुदित लूटत हरिन लोचन लाहु ॥

(४२)

पकरि सुण्ड मतंग की सिसु सिंह करत बिहार ।
औ कहूँ चलि कलभ पकरत केसरी के बार ॥
हरिन-सावक कौ रही पय सिंघिनी निज प्याय ।
तथा चाटत बाघ-सिसु को कहूँ कोऊ गाय ॥

(४३)

कतहुँ बिकसत सरन में हैं बनज - बन बहु भाँति ।
करत हैं गुंजार तिन पै मत्त मधुकर-पाँति ॥
सुमन - कोषनि ते बिपुल मकरन्द-रेनु निकारि ।
पवन कंचनमय करत वा सुभग सर कौ वारि ॥

(४४)

कतहुँ राज-मरालगन बिष-दण्ड को गहि खात ।
चक्रबाक - समूह क्रीड़ा करत कहुँ दरसात ॥
घटनि में भरि नीर तापस-तीय लै कोउ जात ।
पैरि सर में मुदित मन मुनि-बाल आय अन्हात ॥

(४५)

हरित तृन पल्लवनि सौं कोउ जज्ञमण्डप छाय ।
बेदिका बर रचत कोऊ धरत साँकलि आय ।।
कतहुँ बहु बटु मिलि संजोवत जज्ञ को इमि ठाठ ।
कतहुँ मुनिजन करत प्रमुदित सामयजु कौ पाठ ।।

(४६)

देत आहुति समुद ऋत्विक् हवन मंत्र उचारि ।
कतहुँ स्वाहा कहि स्रुवा सों घृत अनल महँ डारि ।।
लेत सुर परतच्छ ह्वै तहँ आपनो मख - भाग ।
और राखत वै सदा जजमान पै अनुराग ।।

(४७)

कतहुँ जज्ञ समापि कोऊ मुदित मन जजमान ।
देत दिजगन कौ अमित सनमानि अतुलित दान ।।
कोउ सरि मैं पैठि अवभृथ करत बर असनान ।
सफल कै निज काज को इमि लहत मोद महान ।।

(४८)

मिले बहु मुनिगन हुते जे नरमदा तट जात ।
सुन्यौ उनसे बाल बलि-हय-मेध-मख की बात ।।
कोउ कह्यो "कोऊ कहूँ त्रयकाल त्रय जग माहिं ।
बलि-सरिस दानी भयो, है, और ह्वै है नाहिं ।।"

(४९)

कान करि बामन मुनिन सों बलि - प्रसंसा भूरि ।
करत देवन दिजन की वह जाचना सब पूरि ।।
लेउँ वासों जायके सारी धरा को दान ।
चूरि या मिसु देउँ दैत-नरेस कौ अभिमान ।।

(५०)

देवन काज सवाँरिबे कौ,
जननी कौ तथा परितोष बढ़ावन ।
त्यौंही सुरारिन के मथि मान कौ,
औ बलि कौ बल-दर्प-हटावन ।
आयसु तात कौ पालन कौ,
मुनि-बृन्दन कौ करिबे मन भावन ।
व्योम के मारग सों सहसा,
बलिराज पै आपु चले इमि बामन ।

द्वादश सर्ग

सार

(१)

चल्यो प्रतीची दिसि दिनमनि निज स्यन्दन सुघर भगाई ।
अरु प्राची सों हँसत धवल-परिधान जामिनी आई ।।
बिकसत कुमुद-कलाप बनज-बन सरनि माँहि सकुचाने ।
जिमि दुरजन पर-सम्पति कौ लखि निज हिय रहत लजाने ।।

(२)

अजहूँ दुरयो मान प्रमदनि के उरज-दरीचिन माहीं ।
चढ़ि रथ आवत चन्द तऊ यह अबहूँ निकस्यो नाहीं ।।
या लगि रातौ बदन किये अति कोप हिये मँह धारत ।
कमल-कोष ते अलि-अवलिन मिसु ससि तरवारि निकारत ।।

(३)

इन केतिक बिरहिन बनितनि कौ बरबस बध करि डारो ।
चहुँ घुमाय निसि-स्याम-सिला पै बिधि बिधु पटकि पछारो ।।
छूटयौ दर्प सीस फूटयो अरु गात टूटि गये सारे ।
टूक टूक ह्वै बिथुरें नभ मैं सोई दीसत तारे ।।

(४)

मृगपति-सरिस निसंक निसाकर कानन-गगन-बिहारी ।
मुकता-नखत बिखेरि दियो नभ-तम-गज-कुंभ बिदारी ।।
दिजपति ग्रसन पाप सों राहुहिं रोग भयो दुखकारी ।
अब बिरहिन-मुख-चन्द्र ग्रसनहित धावत बदन पसारी ।।

(५)

परसि बिमल नरमदा-सलिल को चन्द्र-कर-निकर आई।
भू सौं नभ लौं देत रजत को सुन्दर तान तनाई ॥
धोये धोये धवल धाम जनु करत गगन सौं बातैं।
जिनके हेम-कलस पै फर फर रहें धुजा फहरातैं ॥

(६)

सतखण्डनि पै लसत जरत बहु मनि प्रदीप यहि भाँती।
मनहुँ द्रोनगिरि-सिखर-सीस पै उदित औषधिन पाँती ॥
तिनको बर प्रतिबिम्ब परत इमि धवल नरमदा बारी।
सौदामिनि घन मैं जनु राजत निजगुन सहज बिसारी ॥

(७)

जम्यौ सम्भु को अट्टहास सों लगन नगर अति रूरो।
कै यह स्वर्ग खण्ड ही दूजो सुख सुखमा सो पूरो ॥
कै सुकृती जब भोगि परमपद सुखहिं बहुरि इति आये।
निज अवसेष-पुन्य-फल बदले याहि मही पै लाये ॥

(८)

पुर सोभा इमि निरखि दूरितें बामन अति हरखाने।
सोचि कठिन कर्तव्य आपनो कछुक हिये सकुचाने ॥
पै पितु-मातु-अदेस तथा निज प्रथम कियो प्रन सोची।
कै बिश्राम बिताय जामिनी बलि-छंचन जियरोची ॥

(९)

होतहि प्रात अन्हाय नरमदा दियो भाल रुचि टीको।
अजिन दण्ड कर धरयो कमंडलु कीन्हो बटु बपु नीको ॥
माँगन जात धरा बलि नृप सौं या लगि हिय सकुचाई।
ह्वै ब्रह्माण्ड निकाय लियो द्विज बामन-रूप बनाई ॥

(१०)

करि पुनीत निज चरन धरन सों बलिपुर की बसुधा को।
मखमण्डल दिसि आपु पधारे लखि नभ उठत धुआँ को ।।
होम-गन्ध-आमोद-बलित बहि गवन मिल्यो मग आई ।
त्यों तरुगन पथ पुहुप-पाँवड़े दीन्ह्यों रुचिर बिछाई ।।

(११)

लखि आदित्य-खण्ड सों बटु कौ मख-मण्डप दिसि आयो ।
द्वार पाल एक धाय जोरि कर भूपहिं बचन सुनायो ।।
"महाराज एक ब्रह्म-तेज-बटु बामन को बपु धारे ।
चाहत हैं कछु जज्ञ दान कौ ठाढ़ो आय दुआरे" ।।

(१२)

बोल्यो नृप "तेहि अति आदर सों बेगि इतै लै आवौ ।
सेवक सौ पुनि कह्यौ तासु हित आसन रुचिर बिछावौ" ।।
आये बामन मख-मण्डप मैं धरि बटु-वपु अभिरामा ।
निज प्रभु को पहिचानि मनहिं मन मुनिगन कीन प्रनामा ।।

(१३)

श्रीहत भयो कृसानु कलस की दीपसिखा सकुचानी ।
सहम्यो सुक्र सुमिरि आगम को बलिबिन्ध्या बिकलानी ।।
पै हिमगिरि लौं धीर बीर नरपति के चित नेकु न डोल्यौ
बिधिवत दिजपद पूजि अमिय-रस-गिरा जोरि कर बोल्यौ।।

(१४)

"कीन्हें अबलौं अमित यज्ञ पै नाथ न दरसन दीन्ह्यों।
आजहिं पूरब पुन्य उदय तें भूरि कृपा प्रभु कीन्ह्यों ।।
बेगि बिलम्ब न करिय कहिय दिज समै जात है बीतो ।।
आयसु दीजै तुरत करौं मैं सब राउर चित चीतो" ।।

(१५)

यह सुनि बंस प्रसंसि कह्यो बटु बिहँसि बदन इमि बाता।
"जन्म्यो आय-वीररस या कुल सुनौ दैत्यकुल-त्राता॥
हेमनैन अरु कनककसिपु दोउ युद्ध वीर अवतारी।
नारायन सौं रन-अंगन मैं कीन्ह्यौ समर प्रचारी"॥

(१६)

धर्मवीर प्रहलाद भक्तवर भये पितामहँ तेरे।
सत्य धर्म से मुख नहिं मोरचो झेले कष्ट घनेरे॥
ज्ञानवीर तव जनक बिरोचन ऐसो या जगमाहीं।
तिहूँ काल तिहुँ लोकनि के मधि ता सरिको कोउ नाहीं॥

(१७)

दानवीर के रूप भूप तुम और कहाँ लगि भाखैं।
या लगि पूरन करिय बेगि अब याचक की अभिलाखैं॥
ह्वै है दान पाइ कै अतिहित सरबस दिज कुल केरो।
अरु रवि ससि लौं या जग रैहै भूरि सुजस नृप तेरो"॥

(१८)

बिहँसि बदन बलिराज कह्यो "दिज होउ हिये जनि भोरे।
माँगौ जो भावै हिय तुमकौ कछु अदेय नहिं मोरे॥
अरु तुमहूँ सों दानपात्र लहि जो कोउ औसर चूकैं।
तौ फिर उठैं चूक की ता हिय नितै निरंतर हूकैं"॥

(१९)

अस कहि भूपति परिचारक सों जल लावन तहँ भाख्यो।
कंचन झारी भरि गंगाजल लाय सो नृप ढिग राख्यो॥
लखि भूपति संकेत उठी बलिबिन्ध्या लै कर झारी।
आसन से बलि उठचो सोचि मन बटु-पद लेउँ पखारी॥

(२०)

है अवसान असुरकुल को अब इमि अपने जिय जानी।
बोल्यौ दैत्य नृपति सों या बिधि सुक्राचारज बानी ॥
"तुम नृप ! दान देन मैं अपनो" बिगरो बनो न हेरो ।
कर आयो इन्द्रासन भूपति ! जान चहत अब तेरो ॥

(२१)

किन्हैं दान तुम देन चले हौ, नेकुक हीय बिचारौ ।
ह्वै कस्यपसुत अखिल-भुवन-पति इन सब जाल समारौ ॥
पलक माहि यै तुम्हैं बंचि के बाँधि पताल पठैहैं।
सकल धरा दै सुनासीर को इन्द्रासन बैठैहैं ॥

(२२)

याते जो तुम नृप चाहत हौ हय-मख पूरन कीबो ।
मो मति मानि भुलाइ देहु तुम दानहि या को दीबो॥
हौं हीं या कुल को गुरु या लगि तो हित कहत पुकारे।
होइ है छल अवसिहि तुम सों नृप ! मृषा न बैन हमारे ॥

(२३)

सुनि गुरु बचन बैठि आसन पै नृप कछु हिये विचारी।
चरन परसि तिनके इमि बोल्यो दान विरद संभारी ॥
प्रगटे अखिल भुवनपति जो प्रभु बिस्व रूप जग माहीं।
करि हैं न्याय अवसि ये या मैं नेकहुँ संसय नाहीं ॥

(२४)

बाँधो जाय दान दीबे सौं कहुँ अस होत अनीती ?
ह्वै कै बिस्नु अंस संभव ये किमि करिहैं अनरीती ?
देव दैत्य हम दोऊ बराबरि याते इनके लेखे ।
पच्छपात कहुँ करत ईसगन या जग सुने न देखे ॥

(२५)

यह तौ है गृह-कलह हमारो देव दैत्य हम भाई ।
चाहैं करैं मेल आपुस में चाहैं करैं लड़ाई ॥
इनकौ कहा परी है जो ये देवनि सीस चढ़ावैं ।
अरु इमि बंस-बैर को बरबस या मिस बिपुल बढ़ावैं ॥

(२६)

जो ये अखिल लोक मंगल हित प्रगटे मम कुल आई ।
करि हैं देव-दैत्य-कुल-उन्नति अवनति किये हँसाई ॥
ह्वै सपूत कस्यप से पितु के क्यौं करि हैं अनरीती ।
होय अनीति भले इन गुरु! मोहि न होत प्रतीती" ॥

(२७)

सुनि इमि ज्ञान गिरा भूपति की सुक्र अतिहि मन माख्यो ।
अरु इमि परुष वचन नरपति सों अमित क्रोध करि भाख्यो ॥
"छानत ब्रह्मज्ञान तुम मोसौं मानत एक न मेरी ।
बिदा होन चाहत प्रभुता अरु सम्पति कीरति तेरी ॥

(२८)

होनहार जो होत कछु नहिं ता मैं बार लगावत ।
अभिलाषा चतुरानन की वह जब जेहि दिसि धावत ॥
वाके पाछे लग्यो मनुज-मन याही बिधि सों आवत ।
ज्यौं तनु छाँह पौन पीछे तृन उपमा सुधर लजावत ॥

(२९)

इनहीं धरि बराह-बपु पहिले हेमनैन संहारचो ।
पुनि नरहरि को रूप धारि इन कनककसिपु को मारचो ॥
अबहिं कालि की बात लियो इन तिय को रूप बनाई ।
दैतन दई सुरा अरु देवनि दियो पियूष पियाई ॥

(३०)

इनहीं दियो दैत्य बंधुन बर करौ न कबहूँ मारे ।
पै इनहीं छल साजि अमित-बल जुगुल बंधु संहारे ।।
दैत्य बंस के प्रबल सत्रु सौं करत न्याय की आसा।
इनके भूलि फेर में परिबो भूपति परम दुरासा ।।

(३१)

सहज सुहृद गुरु मातु पिता की जो न सुनत सिख बानी ।
सो पछताय अघाय हीय अरु अवसि होय हित हानी ।।
या ते मेरो बचन महिप-मनि भली भाँति गुनि लीजै ।
या माया-मानवकहिं भूलिहु कछुक दान जनि दीजै ।।"

(३२)

कह बलि बिहँसि "भाल की रेखा प्रबल होत जग माहीं ।
बिधि हरि सम्भु लगाय सकल बल मेटि सकत तेहि नाहीं ।।
दै निज बचन दान दैवे को अब कैसे नटि जैहौं ।
ह्वै है सोई भाग मैं जैसो कुलहि कलंक न लैहौं ।।

(३३)

जड़ तरुवर पै कोउ कुठार लै जो तेहि काटन जाई ।
तौ हूँ वासों निज छाया कौ सो नहिं लेत हटाई ।।
दै हौं दान अवसि अब याकौं चाहै यह अपराधै ।
चाहै ब्यालपास में गहि के या बटु मो कहँ बाँधै ।।

(३४)

जो पै मोहिं बिस्वासि कपट सौं कहूँ बाँधि लै जैहै ।
कस्यप कुल जस-धवल-धुजा तहु नभमण्डल फहरैहै ।।
अरु दिजकुल की कुटिल क्रूरता जुगन जुगन लौं रैहै ।
ईस-अंस की साक धाक सब खाक माहिं मिलि जैहै" ।।

(३५)

असकहि बटुतनुहेरिकह्यो"दिज! निज मन भावतजाँचो।
दैत्य-बंस-अवतंस-नृपनि को कहुँ प्रन होत असाँचो ?
पाय भूप संकेत लियो कर नृप-तिय कंचन-झारी ।
रजत-थार मैं त्यौं बलि लीन्ह्यो बटु-पद-पदम पखारी ॥

(३६)

कह बटु बिहँसि "महिपमनि! अपनो बंस-बिरुद गुनिलीजै।
मेरे साढ़े तीनि पैंड़ महि मोहि दान मैं दीजै ॥
छाऊँ कुटी नरमदा तट पै सुख सो दिवस बिताऊँ ।
गाऊँ सुजस तिहारो नित ही सिव सों ध्यान लगाऊँ ॥

(३७)

जनि डरपौ हिय भूप ! जानि कै यह जाचना अनोखी ।
चाहिय होन विप्र बंसिनकौ सब बिधि-परम संतोषी ॥
कहा धरो है लोक-बिभव अरु धराधाम-धन माहीं ।
ब्रह्मनिष्ठ-दिज कहूँ साँचौ नृप ! कछू चाहिये नाहीं" ॥

(३८)

कह्यो महीपति "अहो बाल बटु ! कहा भई मति भोरी ।
बलि सों दाता पाय करत हौ तऊ जाचना थोरी ॥
माँगहु हरषित हीय धरा धन धाम रुचै जो तोहीं ।
सिव-पद-सपथ कहत साँची दिज! कछु अदेह नहिं मोहीं"॥

(३९)

कह बटु "साढ़े तीन पैंड महि सौं संतोष न आवै ।
तिहूँ लोक को दान पाय कै तो परितोष न पावै ॥
आठहु सिद्धि नवौं निधि सौं अब हमको कहा सहारौ ।
चर्म कमंडलु दण्ड और तप धन है इतो हमारौ" ॥

(४०)

कह नृप "दिजबर गहरु नेकहू अब यामै नहिं कीजै ।
साढ़े तीन पैंड महि तुमको जहँ भावै लै लीजै" ॥
"बोल्यो बटु संकल्प बिहँसि अरु नृप-तिय ढारचो पानी ।
"कहाँ चहत हौ भूमि" बिहँसि बलिबोल्यो इमि मृदुबानी ॥

(४१)

"इतही" यह मुख कढ़त तुरत सिगरो मखमण्डल काँप्यो ॥
दिज निज चरन बढ़ाय दुपद में भूमि रसातल नाप्यौ ॥
जबहिं तीसरो पैंड धरन कौ नहिं थल कहूँ निहारचो ।
करि भुव बंक तबैं बलि सों बटु बलकत बैन उचारचौ ॥

(४२)

"हे नृप रिधि सिधि पाय मानतैं तैं गुरु सीख न मानी ।
तीजौ पैंड़ धरन कौ पुहमी क्यौं न देत अभिमानी" ?
हिमगिरि सो ऊँचो पुनि अपनो दर्पित सीस नवाई ।
"नापि लेउ मेरो तन सारो, बिहँसि कह्यो बलिराई ॥

(४३)

यौं कहि परचौ दण्ड-सम महि पै अरु बलि कछू न भाख्यौ ।
बामन चरन उठाय आपनों नृपति-सीस पै राख्यौ ॥
विद्याधर किन्नरगन प्रमुदित नभ दुन्दुभी बजाई ।
गायो सुजस महीपति-सिर पै सुमन-जूह बरसाई ॥

(४४)

कह बटु अबहुँ पैंड़ पूरो हित ठौर दिखात न मोहीं ।
या लगि बिकट धर्मबन्धन मैं अब बाँधत हौं तोहीं" ॥
अस कहि पच्छिराज का सुमिरचो बरुन-पास मँगवायो ।
तामै बाँधि दैत्य-अधिपति कौ सुतल पताल पठायो ॥

(४५)

इमि निज स्वामिहि बचन-बद्ध ह्वै पास-बद्ध अवलोकी ।
सुर-विजयी-नृप-चमू-पाल निज क्रोध सक्यो नहिं रोकी ।।
बोल्यो "या बटु ने धोखो दै नाथ ! तुम्हें है बाँधो ।
अरु या मिस करि कपट आचरन देवन को हित साधो ।।

(४६)

या ते मोहि दीजिए आयसु याको रनहिं प्रचारौं ।
कै कस्यप को धाम तपोवन अबहीं जाय उजारौं ।।
कै निज कोध-कृसानु माँहि अमरावति डारौं जारी ।
कै सुर-बंस बिहीन करौं मैं आजु धरा कौ सारी ।।"

(४७)

अस कहि सूल उठाय उग्र दृग बामन दिसि अवलोक्यौ ।
तेहि नृप करि संकेत नैन सों तुरतै यौं कहि रोक्यौ ।।
"हे सेनाधिप ? याहि बचन दै बँध्यौं धर्म की डोरी ।
या ते छमा कीजियै बटु कहँ यह अनुमति है मोरी ।।

(४८)

लखौ काल की कुटिल चाल जिन ऐसो समय दिखावो ।
बाँध्यो बटु ने ताहि, कोपि जिन सुरपति-दर्प नसावो ।।
तुम सब देखत रहौ जथामति प्रजा न कछु दुख पावै ।
रहियौ सबै सचेत जबैलौं बानासुर घर आवै ।।

(४९)

कहियो चरन बन्दि माता अरु पितु सों यहै सँदेसो ।
बाँधो गयो धर्म के बन्धन जनि हिय करैं अँदेसो ।।
जदपि बैठि सुरपति-सिंहासन राज करन नहिं पायों ।
पै त्रिलोक-अधिपति-हरिहू को समुहे हाथ नवायों ।।

(५०)

तात तुम्हारे पुन्य-प्रभावनि इन्द्रहि समर हरायो ।
औ कस्यप-कुल-कलित-ध्वजा कहँ नभमण्डल फहरायो ।।
दान सबै बसुधा कौ दैकैं हरि कौ हाथ नवायों ।
पै बिरधापन माहिं रावरे पद सेवन नहिं पायों ।।

(५१)

दै कै पताल को राज नरेसहि,
आपु सुरेसैं उतै बुलवायो ।
त्यौंही बृहस्पति कौ दै निदेस,
तहाँ तिनकौ अभिषेक करायो ।
कीन्ह्यौ भलो इमि देवन कौ,
औ अदेवनि कौ यहि भाँति दबायो ।
बामन कानन कौ गवने,
पितु मातु कौ यौं करिके मन भायो ।।

त्रयोदश सर्ग

सवैया

(१)

उतै संगर मैं घननादहिं तोषिकै,
    राकस-राज सौं जोरि मिताई ।
जनथान मैं द्वैक दिना रहिकै,
    खरदूषन की लहिकै पहुनाई ।
रजनीचरनाथ सों पाइके भेंटहि,
    औ अपनो मख-बाजि फिराई ।
फहरावत बीर बिजै की धुजा,
    निज देस कौ बान चल्यो हरखाई ।।

(२)

उतै दुन्दभी पै खरी चोट परी,
    दहले हिये दैत प्रवीनन के ।
पग आगे बढ़ाये न नेकु परैं,
    छुटिगै इमि साहस धीरन के ।
लखि बान कह्यो "रन मैं चढ़िकै,
    न मुरे समुहे कबौं तीरन के ।
बिडरै या चमूचय झोंकनि सौं,
    दुरभाग बिरोधी समीरन कै ।।

(३)

यौं कहिकै जबहीं बर बीर नै,
आपुनो स्यंदन आगे चलायो ।
सो लखिके बलि के लघुबन्धु नै,
मत्तमतंगज कोपि बढ़ायो ।
या बिधि दैत-चमू-चतुरंग कौ,
बान नै चौगुनो चाव चढ़ायो ।
ह्वै बिजयी पै निरास हियो,
निज सैन लिये नगरै नियरायो ।।

(४)

गज बाजि की भीर दिखाइ परै,
न अमोद प्रमोद की बातैं कहूँ ।
बिकसे मुख-कंज प्रजा के लसैं,
न बिनोद मिलाप की घातैं कहूँ ।
कटि छाम पै धारे भरी गगरी,
बनिता न फिरैं बलखातैं कहूँ ।
बगियानि मैं मालिनियानि के बृन्द,
लखाइ परैं नहिं जातै कहूँ ।।

(५)

वह नर्मदा दूबरी पीरी परी,
बलिराज के यौं बिहरानल तायकै ।
हरियारी मिटी तरु - बृन्दन की,
न प्रसून खिलैं खरो सोग मनायकै ।
सुक सारी बुलाये न बोलैं कहूँ,
पुर के जन कोऊ मिलैं नहिं धायकै ।
करुनारस की मनौ सैन सबै,
नगरी मैं निवास कियौ इतै आयकै ।।

(६)

सूनो परो मखमण्डल त्यौं,
महि लोटत तुंग धुजा अरु नारी।
जज्ञ-कृसानु भई चय राख की,
औंधो परो घट सूखि गौ बारी।
स्वान स्रुवा गहैं, वायस बातिन,
औ घृत - दीपनि चाटैं बिलारी।
यौं हय-मेध-थली की दसा,
महिपालकुमार ने आय निहारी॥

(७)

मखसाला भई सबै श्रीहत यौं,
मनौ रुद्र ने कामपुरी लई लूटी।
लखिकै दयनीय दसा बलि-बन्धु के,
सासह ही को गयो मनो छूटी।
गृह-द्वार की बन्दनवार को बाल,
बिलोक्यो परी इतही उत टूटी।
अरु या मिसु दैंतकुमारनि कौ,
सब ही बिधि भाग गयौ मनौ फूटी॥

(८)

मूरति - सी करुनारस की,
पलका पै परी लखी मातु अकेली।
काटे गये तरु पै ज्यौं चढ़ी,
मसली मुरझाई गिरी जनु बेली।
बैठि गई तिय साहसकै,
बहियाँहि गही कोउ दौरि सहेली।
दीन्ह्यौ सबै बसुधा जिन दान मैं,
वा बलि की यह नारि नवेली॥

(९)

बान को देखत ही तिय नै,
दुख पाय घने अँसुवा बरसायो ।
ज्यौं निधनी धन पावै कहूँ,
लखिकै तेहिं बाम कौ धीरज आयो।
सूँघि के माथ बिठाय समीप,
भुजा भरिकै तिहिं कंठ लगायो।
बोलन कीन्ह्यो प्रयास तऊ,
भरि आयो गरो न कछू कहि आयो ।।

(१०)

आयो बिरोचन ताही समै,
बिरधा बलि-मातु हूँ साथहि धाई ।
बान के आवन की सुधि पाइकै,
आइ जुरे कित लोग लुगाई ।
सोक-नदी उमड़ी अति बेग सौं,
धीरज-कूलिन दीन्ह्यों गिराई ।
तौ लगि सुक्र लिये बटु साथ,
उतै नृप-मन्दिर में गयो आई ।।

(११)

परसे गुरु के पद पंकज बान नै,
पाय असीस भयो बड़ भागी ।
अबला निज घूँघट घालि मयंक सों,
आनन वामै दुरावन लागीं ।
सुत ! धीरज धारो कह्यो गुरु नै,
बिधि बाम न काहि कियो हतभागी ?
वह बीति गयो जु पै पुन्य-प्रभात,
तौ काल-निसा चलिहै तुमै त्यागी ।।

(१२)

हौं बलि कौ समुझायो कितो,
बनिये जनि या बिधि औढर दानी।
पै बटु की बतियानि मैं आयकै,
मेरी सिखावनि एक न मानी।
हाँथ जरैं मख के करतैं,
बिधि फेरि दियो निज लेख पै पानी।
आजु लौं ऐसी सुनी न लखी,
कहुँ बाँधेउ जात त्रिलोक के दानी॥

(१३)

पै अब यामैं धरो है कहा,
जो भई सो भई सुत! ताहि बिसारौ।
बूढ़े बबा कौ करौ प्रतिपाल,
जरा जननी को सबै दुख टारौ
दैत के बंसिन के सुत! बान,
अहौ तुमहीं बस एक सहारौ।
फूलौ फलौ सुर - पादप लौं,
लहिके इमि आसिरबाद हमारौ॥

(१४)

आजु लौं याही सुन्यौ औ गुन्यौ,
पदमा बर बानि मैं बैर है भारी।
ही के दुराव दुराय दुवौ,
सुत! सीस पै तेरे रहैं करधारी।
संग बिजय की बिभूति रहै सदा,
जौ लगि देव-नदी बहै बारी।
बानी बिलास करै मुख मैं,
कमला कबौं बाँह तजै न तुम्हारी॥

(१५)

परसै पग लागि जबै बढ़िकै,
तबहीं गुरु बान की मातु निहारी ।
तिय सौं कह्यो धीर धरै किन तू,
इमि जात मरी कहा सोच की मारी ।
सुत बान सौं तैंने जन्यो जिहि कौ,
जस-चंद करै तिहूँ लोक उजारी ।
मिटि जैहे निरासा-निसा सिगरी,
सुत ह्वै है सबै महि को अधिकारी ॥

(१६)

यौं कहिके गमने गुरु गेह कौ,
बान ने मातहिं धीर बँधायो ।
दान में दीन्ही धरा तजि देन कौ,
त्यौं अपने मन माहि दृढ़ायो ।
भोजनकै कछूकै बिसराम,
प्रभात चमू चतुरंग सजायो ।
जीतन कौ मही उत्तर मैं,
चढ़िकै रथ पै बर बीर सिधायो ॥

(१७)

मारग में किते द्यौस बितायकै,
सोनपुरी पहुँच्यो वह जाई ।
देव रह्यो कोऊ ताको अधीस,
सुनी जबै बान की वाने अवाई ।
लै निज सैन लरचो तिनके सँग,
पै न बिजै रन मैं सक्यौ पाई ।
बाम-सुता-सुत ले निसि मैं,
भय मानि गयो पुर त्यागि पराई ॥

(१८)

सैनप नै पुर में पगुधारिकै,
दीन्हीं तहाँ फिरवाय दुहाई ।
दै अभैदान प्रजाजन कौ,
अपनी दई ऊँची धुजा फहराई ।
भोर ही राज-सिंहासन पै,
सुरनाथ लौं वान लस्यो हरषाई ।
भेंट लै सारी प्रजा नृप कौ,
तहाँ आई बिजै पर देन बधाई ॥

(१९)

भूप के बंधुनि सौं लरिकै रन,
रंचक हू बलि-सूनु न रोखे ।
सौंप्यौ तिन्हैं अधिकार सबै,
अरु कीन्हे किते उपकार अजोखे ।
त्यौंही सुसानन कौ प्रन भाखि,
प्रजानि को भूप भले परितोखे ।
औ दिजवृन्दनि कौ दियो दान मैं,
धेनु, धरा, धन, हू पय-पोखे ॥

(२०)

मयदानवै बान बुलाय उतै,
गृह हेमबिमंडितकै बनवायो ।
लखि जाकी प्रभा अमरावती ने,
मन माँहि लजायकै सीस नवायो ।
कियो गेह-प्रबेस प्रमोदित भूप,
कका, जननी, बबा, कौ बुलवायो ।
गुरु सुक्र तथा असुरारिनि को,
सुरधाम लौ दीन्ह्यौ अवास सुहायो ॥

(२१)

सोनपुरी मैं करै लग्यो राज,
प्रजा परिपालन मैं मन लाये ।
इंद्र लौ आसन पै लस्यो बान,
बृहस्पति सौं गुरु सुक्र सुहाये ।
फूलै फलै सबै लागी प्रजा,
धन धान्य सों खेत लसे लहराये ।
मानौ तिहूँपुर के बिभौ आयकै,
सोनपुरी मैं बसे सुख छाये ।।

(२२)

बीती किते बरसै नृप बामनै,
चन्दकला - सी उषा उपजाई ।
त्यौंही षड़ानन लौं असकन्द,
तनैं भयौ दैत-नरेस के आई ।
खेलैं दुऔ मनिमन्दिर मैं,
जननी कौ अपार प्रमोद मढ़ाई ।
बाढ़न लगी ससी लौं सुता,
औ चढ़ै लगी अंगनि अंग निकाई ।।

(२३)

पितु के सँग बाल सकंद जबै,
सिव-सेल पै खेलन जायो करै ।
अँखियानि कुमार की कौहूँ गनै,
औ गजानन सुण्ड नपायो करै ।
गहि मूस की पूँछ मरौरै कबौं,
बरहीं पैं कबौं चढ़ि जायो करै ।
फुसकारत ब्यालिनी को निदरै,
सटा केसरी की गहि धायो करै ।।

(२४)

अस्त्र प्रयोग निवारन की,
धनुबेद मैं वा ने क्रिया सिखी सारी।
सब्द को बेध तथा चल-लच्छ,
प्रहारिन की विधि हू गुनि डारी।
जान्यो गदा-असि-युद्ध प्रवीन,
प्रवीरनि सौं लरै लाग्यौ प्रचारी।
या बिधि बान - कुमार भयो,
सो षड़ानन ही सौं महा धनुधारी ॥

(२५)

सुत बान को होड़ षड़ानन सौं करि,
या विधि वान चलायो करै।
सुर-रूख प्रसूननि काटि किते,
सिव-सीस समोद चढ़ायो करै।
सर-सेतु सों भूमि-अकास मिलाप,
सुरेस - मतंग मँगायो करै।
हिमवान मैं त्यौं भृगुनायक लौं,
किते क्रौंच के रन्ध्र बनायो करै ॥

(२६)

सर छूटि सरासन सौं निज लच्छ पै,
कौ हू नहीं लगि पायो करै।
वह धाय कुमार समीरन बेग सों,
बीच ही तैं गहि ल्यायौ करै।
चुटकी सों गहै अनी कुन्तल की,
असि कुंठित केती करायो करै।
करबाल प्रहार सौं सैलनि के,
नित ही जुग खण्ड बनायो करै ॥

(२७)

'एक' 'नौ' 'सात' 'प' 'ना' 'मा' पढ़ै,
कबौं लैखनी कौ उलटी मसि बोरै।
आँगुरी सौं पटिया पै लिखै,
खरिया तेहि माहि मिलायकै घोरै।
नैकु बुलाये न बोलै कबौं,
कबौं खीझि कै केतो मचावति सोरै।
मूरति लौं गड़ी बैठी रहै,
पै पुकार सुनेही भगै बरजोरै॥

(२८)

बीते कछू दिन राज-सुता,
गुरु-तीय कौ सासन मानन लागी।
सीखन लागी कछू गिनती,
अरु आखर हू पहिचानन लागी।
त्यौं तुतराय सखीन के संग,
कथानि कौ आपु बखानन लागी।
औ गुड़ियानि कौ खेलिबे कौ,
जननी सौं कबौं हठ ठानन लागी॥

(२९)

या बिधि षोड़स बर्ष गये,
अधरानि पै वाके ललाई लसै लगी।
चन्दन हू के लगाये विना,
सबै अंगनि सौरभ-सी सरसै लगी।
अंजन रंजन कीन्ह्यो नहीं,
चख काजर रेख लगी दरसै लागी।
बाल के आनन सौं मुसकानि,
सुधा घनसार घनी बरसै लागी॥

(३०)

चौंसठ हू कला सीखी सबै,
पै बिसेख रुच्यो तेहि चित्र बनाइबो।
जान्यो मृदंग बजावन कौ,
षटराग पै बारितरंग मिलाइबो।
'मूर्च्छना' 'ग्राम' औ मींडनि की,
गमकैं करि बीन प्रबीन बजाइबो।
मंजु मयूर लौं नाचिबो सीख्यो,
अलापि 'बसन्त बहार' को गाइबो ॥

(३१)

बीन बजाय उषा जबै चाव सौं,
मेघ-मलारनि गावन लागैं।
घेरि घने नभमण्डल कौं,
बदरा बुँदिया बरसावन लागैं।
सो लखि नाचै मयूर लगैं,
कल क्वैलियाँ तानै लगावन लागैं।
पै दिन ही को निसा गुनिकै,
चकवा चकई दुख पावन लागैं ॥

(३२)

गायन चातुरी औ पटुता लखि,
तुम्बुर नारद भै मति - हीने।
किन्नर जच्छ सकायकै सामुहैं,
गावन कौ कबौं नाम न लीने।
होय अनर्थ कहूँ जग मैं नहिं,
या पै बिचार जबै बिधि कीने।
डोलिहैं मेरु धरा सुनि तान कौ,
या लगि सेष कौ कान न दीने ॥

(३३)

चितरेखा कुभंडक की तनया,
तिया बाल मृनालहू तें सुकुमारी।
निज सील सुभाव सों मंत्रि-सुता,
समबैस उषा की सखी बनी प्यारी।
जबै बैठैं दोऊ निसि आसन पै,
जुग चन्द की फैलै दुचन्द उजारी।
कबौं दोहुन की बतियानि मैं मंजु,
पियूष की धार बहै रसवारी ॥

(३४)

सजि सूहे दुकूलनि केस-कलाप,
प्रसूननि ही सौं बँधावैं, दुऔ।
कबौं आपुस मैं दुऔ मान करैं,
कबहूँ परि पाँय मनावैं दुऔ।
मनुहारि करैं मिलि दोऊ कबौं,
औ भुजा भरि कंठ लगावैं दुऔ।
पय-पानिप लौं मन दोऊ मिले,
नहिं रंचक भेद दुरावैं दुऔ ॥

(३५)

ऊषा कह्यो "सखी ! देखु बृथा,
ये चकोर रहैं निसि मैं हमैं घेरे।
त्यौं मदमाते मलिन्दन-बृन्द,
करै मुखमण्डल पै नितै फेरे।
देखौं तड़ागनि माँहि जबै,
मुँदि सम्पुट जात सरोजनि केरे।
कारन याको कहा सजनी,
तुमही कहौ ध्यान न आवत मेरे ॥

(३६)

भाजन के जल मैं सफरी,

औ लखाई परै कबहूँ जलजात हैं ।

पै जबै पानि सौं चाहौं उठावन,

जानै कहाँ ते कहाँ वै बिलात हैं ।

और कहाँ लौं कहौं सजनी,

दृग कानन सौं बढ़तै मिले जात हैं ।

द्वै दिन ते कछू जानी नहीं,

मन और के और कहा भये जात हैं ॥

(३७)

मन रंजन खंजन के चटुआ,

अँगना में कहा दृग खोलैं नहीं ।

परे पंजर में चकवा चकई,

औ चकोरिनी मंजु कलोलैं नहीं ।

केहि बैर सौं वै सुक सारिका चारु,

बुलायेहू ते मुख खोलैं नहीं ।

तिमि गावन में पटु कोयलियाँ,

मन सामुहे क्यों मृदु बोलैं नहीं ॥

(३८)

अंगराग न अंग लगावै सखी,

पग जावक नायन लावै नहीं ।

नहिं अंजन आँजे अली दृग मैं,

बिरिआइन बीरी रचावै नहीं ।

गुहि सेत - जुहीनि के मंजुहरा,

गरे मालिनिया पहिरावै नहीं ।

जेहि भौन में बैठों तहाँ निसि मैं,

परिचारिका दीप जरावै नहीं ॥

(३९)

वैई कदम्बनि कौ परसे,
बहैं सीतल मन्द सुगन्ध बयारी ।
त्यौं सित चादर-सी बिछी भूमि पै,
वैसियै धौल - मयंक - उजारी ।
वैई प्रसून पराग वेई,
रितु के गुन वैसेई देखि ले प्यारी ।
पै गति हाय हिये की सखी,
वा कछू ते कछू भई जात हमारी'' ॥

(४०)

''दूखै चकोर अलीनि वृथा,
चकवा चकई पिक औ सुक 'सारी ।
औगुन आयो नहीं रितु मैं,
प्रकृती के अजौं गति वैसियै प्यारी ।
मानै अनैसो न यामै कछूक,
दुराज प्रजा भई राजकुमारी ।
धीरज धारो खरो हिय मैं,
हरिहैं दुख सोई बड़ो धनुधारी ॥

(४१)

या तन औ मन पै सजनी,
कछूहू अधिकार रह्यो नहिं तेरो ।
तो हिय मैं अब साँचो सुनौ,
कियौ मैन महीप नै आयकै डेरो ।
या ते सबै विपरीत लगै तोहिं,
दूसरो और न कोऊ निबेरो ।
पूजिहैं हीके सबै अभिलाष,
यहै बस आसिरबाद है मेरो ॥''

(४५)

पूँछै लगी कहौ "राजसुता,
निसि मैं यह कैसी दसा भई तेरी।
कै जुर आयौ पियारी तुम्हैं,
कै लई कोऊ-अंतर व्याधि ने घेरी।
साँचही साँची कहौ हम सौं,
जो पै राखती तू इती प्रीति घनेरी।
तोहिं बिहाल लखै सजनी,
घबराय रहीं अतिसै मति मेरी" ॥

(४६)

"तो सौं दुराव की बात कहा,"
इमि भाख्यौ उषा तेहि की दिसि हेरी।
"सापने में धनुधारी लख्यौं,
जिन माल प्रसूननि मो गर गेरी।
अंक भरयो मोहिं गाढ़े सखी !,
करी नेह-नही बतियाँ बहुतेरी।
पानि सरोजहिं धारि लखौ,
धरकैं अजहूँ छतियाँ लखौ मेरी ॥

(४७)

नीरद नील सौ सुन्दर गात,
लसै छनदा पट पीत निकाई।
बाहु बिसाल, बड़े बड़े नैन,
बिलोकत ही चित लेत चुराई।
आयकै चौसर दीन्हों बिछाय,
दियो तनहू मन दाँव लगाई।
हारि कै वा सँग री सजनी,
बिन दाम गई तेहि हाँथ बिकाई ॥

(४८)

ऐसोई बीर ! उपाय करौ,
जेहि आनन-इन्दु लखौं तेहि केरो।
जात जरो बिरहानल गात,
बुझावन में जनि लाउ अबेरो।
जौ लगि जीहौं सुनौ सजनी,
कबहूँ उपकार न भूलि हौं तेरो।
जैसे बनै अरी तैसे सखी !,
अबहीं चितचोर बुलाय दै मेरो॥

(४९)

सो सुनिकै चितरेखा कछू,
बिहँसी तेहि ओर चलायकै आँखैं।
"दै है कहा हमकौ उपहार मैं,
जो तुव पूरी करैं अभिलाखैं।
"या तन औ मन तेरो भयो,
तोहि देन को और कहा हम राखैं।
प्रेमहू को करि - लै समभाग,
तऊ मन माहि उषा नहिं माखैं"॥

(५०)

धीरज राजसुता कौ बँधायकै,
जायकै सो पटतूलिका लाई।
नाक - रसातल - बासिन की,
तिय ने तेहि पै तसबीर बनाई।
अंकन लागी जबै पट पै,
जदुबंसिन के बर चित्र सोहाई।
देखत ही अनिरुद्ध की ओर,
कछू मुसकानि उषा-मुख आई॥

(५१)

भाख्यो सखी सों उषा सतराय,
"यहै चितचोर यहै धनुधारी ।
बेगि ही याही बुलावन कौ इत,
क्यौं न उपायनि कौ करै प्यारी ।"
सो कह्यौ "या जदुबंस-बिभूषन,
मार-तनै अतिसै बलधारी ।
द्वारिका माहिं बसै सुखधाम,
करैं ससि लौं ससि बंस उजारी ।।"

(५२)

ऊषा कह्यो "सुनु री सजनी,
तुमरे बस जीवन प्रान हमारौ ।
या जग मैं कोउ देखि परै नहिं,
मो दुखिया के जिया को सहारौ ।
बोरौ चहौ गहि सोक के सिन्धु मैं,
कै बहियाँ गहि मोहि उबारौ ।
टारो निरासा अँध्यारो सबै,
जु पै देखी चहौ मुखचन्द उजारौ ।।"

(५३)

"धीर धरौ चितरेखा कह्यौ,
तुमरे हिय कौ अभिलाष पुरैहौं ।
जानती व्योम-बिहारिन की बिधि,
द्वारिका कौ अबहीं उड़ि जैहौं ।
मंत्रनि के बल, मोहि सबै,
रखवारनि कौं अबही इतै ऐहौं ।
या बिधि सौं प्रिय बालम कौ,
अबहीं सजनी तोहि ल्याय मिलैहौं"।।

(५४)

यौं कहिकै चितरेखा चली नभ,
मानौं दई कोऊ रेख खिंचाई ।
कै करि कोप प्रवीर कोऊ,
धनुधारी दियो मनौ बान चलाई ।
द्वारिका मैं पहुँची तिय जायकै,
हेरि प्रभा गयो हीय हिराई ।
पै सखि - कारज सीस धरे,
अनिरुद्ध के भौन धँसी सचुपाई ।।

(५५)

सेष की सेज पै राजैं जथा हरि,
छीर-पयोनिधि मैं दुखहारी ।
फेन-सी सेज पै सोवत त्योंही,
बिलौर के मन्दिर ताहि निहारी ।
कीन्हौं मनै मन बाम प्रनाम,
उठाय लियो पलका सुखकारी ।
मंत्रनि के बल सौं उड़ि आपु,
अकास सो सोनपुरी पगुधारी ।।

(५६)

अनिरुद्ध कौ या बिधि ल्याई तिया गहि,
पै यह भेद न काहू लखान्यो ।
नृप की तनया सब दुःख भुलायकै,
आपुनो भाग-उदै अनुमान्यौ ।
दबिकै उपकार के भारनि सौं,
चितरेखहि त्यौं अतिसै सनमान्यो ।
तजि द्वारिका को कहाँ आय गयौ,
यह रंचक मार-कुमार न जान्यो ।।

(५७)

मंत्र-निवारन होत ही नैननि,
त्यागि कहूँ निंदिया पगुधारी ।
हेम-बिमंडित-भौन की भीति ने,
त्यौं निज दीठि कुमार ने डारी ।
पौढ़यौ जक्यो सो रह्यो कछु देर लौं,
पै मुख बैन सक्यो न उचारी ।
तौ लगि वा रति की मद-मोचिनी,
आय गई हँसि राजकुमारी ।।

(५८)

पाँयनि पै परिकै अनिरुद्ध के,
बोली तिया भरि लोचन बारी ।
"तो सँग चौंसरि खेलिकै नाथ,
गई अपनो तनहू मन हारी ।
या लगि कीन्ही ढिठाई इती,
कर मेरो गहौ हौं गई बलिहारी ।
चेरी भई तुव पाँयनि की,
अब राखिले बालम लाज हमारी ।।"

(५९)

यौं कहि पंकज सौं गहि पानि कौ,
वा कहँ मंजन आपु करायो ।
त्यौंही गुलाब फुहारनि सों,
अन्हवाय पितम्बर कौ पहिरायो ।
ब्यंजन लाय सुधारस स्वादु के,
आपने हाथन वाम जिमायो ।
पान खवायो प्रमोद भरी,
परिचारिका चौंसर आय बिछायो ।।

(६०)

ऐसै बान-मन्दिर मैं विहरि उषा के संग,

लाग्यो सुख दिवस बितावै अनिरुद्ध बीर।

उत द्वारिका मैं सुत-हरन अचानक ही,

लखि जदुवंसिन को हिय न धरत धीर।

सोवत सो जाको हिय-खण्ड ही हिराय गयो,

कैसे कै बखानै कोऊ जननि-हिये की पीर।

भोर ही ते साँझ लौं नितैही भूप-मंदिर मैं,

लागी रहै सोक की सताई बनितानि भरी॥

चतुर्दश सर्ग

रोला

(१)

कंपत रवि नभ कढ़त मनहु बरसावत आगी ।
मन्द समीरन ब्याल - बदन - स्वासा सम लागी ॥
कूजत बिहग-समाज आजु जनु दुख दरसावत ।
सुमन-जूह तरु डारि मनहुँ अँसुआ बरसावत ॥

(२)

हिय - अवेग-सी उठैं सिन्धु लहरैं बहुतेरी ।
कोउ अनहोनी बात कहत जनु या मिसु टेरी ॥
बहत आँसु की धार सरिस सरिता महँ पानी ।
मनहुँ मही की भई कोऊ अतिसै हित हानी ॥

(३)

केहि कारन अनिरुद्ध आजु नहिं परत लखाई ।
औ पग परसन काज बधू अब लौं नहिं आई ॥
यासों कछु मन खिन्न रही बर रुकमिन रानी ।
अरु सोचत कछु रहे मनहिं मन सारंगपानी ॥

(४)

तौ लगि तजि रँग-भौन तहाँ आयो बल भाई ।
पूँछयो "कहँ अनिरुद्ध कहूँ नहिं परत लखाई" ॥
सो सुनि रुकमिनि तुरत तहाँ भेजी एक दासी ।
लावहु कुँवर बुलाय करै सो दूरि उदासी ॥

(५)

चढ़ी महल सतखण्ड कुँअर रंग - भौन निहारी ।
कटु रव तेहि फटकारि लगे कूजन सुक - सारी ॥
भूकन लाग्यो स्वान गई दासी घबराई ।
गर्जनि ताकी सुनत बधू सिजिया तजि आई ॥

(६)

"कीन्हीं बड़ी अबेर कह्यो दासी मृदु बानी ।
कब की जोहति बाट बैठि चिन्ता-बस रानी ।
गौने कहाँ कुमार खड़े पूँछत बलदाऊ ।
लीन्ह्यौ घेरि बिषाद आजु मानौ सब काऊ ॥"

(७)

कह बधु घूँघट घालि कछू मन माहिं लजानी ।
"बहुत राति लौ कहत रहे हर - ब्याह-कहानी ।
पै तबहूँ नहिं नींद जबै नैननि मैं आई ।
गायौ राग बिहाग दई मैं बीन मिलाई ॥

(८)

धरी इतै पै पाग और पदत्रान इहाहीं ।
यातै उपजति कछुक कछू चिन्ता मन माहीं ॥
गौने ह्वैहैं कहूँ सिन्धु - तट खान बयारी ।
आवत ह्वैहैं चपल तुरँग कीन्हें असवारी ॥"

(९)

तुरत अटा ते उतरि रानि ढिग दासी आई ।
भाख्यो सकल प्रसंग बधू सौं जो सुनि आई ॥
सो गुनिकै बल कान्ह, साम्ब, आदिक दुचिताये ।
प्रद्युमन, सात्यकि, सहित सभा मँह सब जुरि आये ॥

(१०)

बल सात्यकि तन हेरि कह्यो इमि गहबर बानी ।
"गयो कहाँ अनिरुद्ध आजु कछु परत न जानी ॥
आधी निसि लौं रह्यौ गौरि-हर-ब्याह सुनावत ।
पीछे बीन बजाय रह्यो मधुरैं कछु गावत ॥

(११)

परी पाँवरी पाग महल मैं बधू बतावत ।
गयौ कहाँ चलि बाल समुझि मैं नेकु न आवत ॥
खले न द्वार कपाट जगत सारे प्रतिहारी ।
नहिं कछु भेद लखात कहा करिहैं त्रिपुरारी" ॥

(१२)

कह्यौ सात्यकी "नाथ ! ताहि मृगया अति भावत ।
गयो कहूँ मृग साथ बालबर बाजि भगावत ॥
अथवा भटक्यो भूलि कहूँ बन-बीथिन माहीं ।
या ते अब लौ आय सक्यौ अपने गृह नाहीं ॥

(१३)

तब लौं एक चर आय ललित लायो मनि-माला ।
राख्यौ बल ढिग जाय सुघर कसमीर दुसाला ॥
कह्यो जोरि कर "नाथ इन्है उत्तर दिसि पायों ।
प्रभुहिं समर्पन काज इन्हैं सेवा मैं लायों" ॥

(१४)

सुत को पट पहिचानि अतिहि लाग्यो मन ऊबन ।
करुना-सिन्धु अगाध माहि लागे बल डूबन ॥
गहबर-हिय हरि कह्यो जबहि माला पहिचानी ।
"काहू डारयो मारि ताहि ऐसो जिय जानी ॥"

(१५)

तव बल सों कर जोरि साम्ब बोलेहु मृदु बानी ।
"वा समुहे कोउ वीर सकत नहिं पकरि कृपानी ॥
नैसुक साहस गहो सवनि को धीर बँधाओ ।
जानत भूत भविष्य बिज्ञ दैवज्ञ बुलाओ" ॥

(१६)

सो सुनि बल धरि धीर तुरत चर एक पठायो ।
प्रश्न बिचारन काज बिज्ञ जोतिसिन बुलायो ॥
ते सुनि राज-निदेस तुरत चर साथहिं आये ।
दीन्हो बल बहु दान उचित आसन बैठाये ॥

(१७)

तब बोले हरि "सुनहु बिप्र या प्रस्न हमारो ।
गयो कहाँ अनिरुद्ध सकल मिलि यहै बिचारो ॥
जागत आधी राति रह्यो निज मन्दिर माही ।
पै प्रभात कौ सौध छाँड़ि आयो महि नाहीं" ॥

(१८)

सुमिरि गजानन सम्भु गौरि अरु सारद सेखैं ।
खैंचन लागे बिप्र तुरत पटिया पर रेखैं ॥
अरु बूढ़े रम्माल गनित करि जोग मिलाई ।
पाँसे डारन लगे कछुक मन मैं सकुचाई ॥

(१९)

प्रथम रमालन पृथक पृथक निज जोग बिचार्यो ।
पुनि सब मेल मिलाय बचन यहि भाँति उचार्यो ॥
किते चक्र कुण्डलिन तहाँ जोतिसिन बनाये ।
बहुरि सोधि पंचांग आपनी बिधि बैठाये ॥

(२०)

"उत्तर गयो कुमार कोऊ प्रमदा सँग ताके ।
दियो मंत्र-बल छेकि बाम वा दिसि के नाके ।।
जासे कोऊ सकै नाहिं पीछो करि वाको ।
धावैं जादव बीर छीनि नहिं लेय युवा को ।।

(२१)

पै संका की बात नाथ ! या में नहिं कोई ।
करि नहिं सकत अनिष्ट चहै यम हू सो होई ।।
याते चरन पठाइ बाल को सोध लगावो ।
अभय करौ पुरकाज सकल भय-भेद भगावो ।।"

(२२)

अस कहि मंत्रन कीलि ग्रहनि दैवज्ञ सिधारे ।
बल, हरि, साम्ब प्रद्युम्न सदन मन मुदित पधारे।।
रुक्म-सुता परितोषि रुक्मिनी को समुझाई ।
तब अन्हाइ जल पान कियो कछु धीरज लाई ।।

(२३)

पुनि कछु करि बिस्राम सभा मँह हलधर आये ।
तुरत दूत को भेजि सकल चर-निकर बुलाये ।।
निज निज कारज निपुन, कूट नय जाननहारे ।
लै संकेतहिं खाल बाल की खैंचनवारे ।।

(२४)

दीन्ह्यौ तिन्हैं निदेस "बेगि उतर दिसि जावौ ।
गयो उतै अनिरुद्ध तासु को पतो लगावौ ।।
जो नहिं मिल्यो कुमार किती अपकीरति ह्वैहै ।
गुप्त-चरन की साख धाक माटी मिलि जैहै ।।

(२५)

पुनि हलधर निज पानि पान सबहिन कौ दीन्ह्यौ।
बहु बिधि सों समुझाय बिदा चर-निकरनि कीन्ह्यौ ॥
ते सब चले जुहारि स्वामि-कारज मन लाये ।
ब्यापारी, वटु, साधु, विप्र तिय वेष बनाये ॥

(२६)

कन्दर खोह पहार सरित सर नद अरु नारे ।
अनायास करि पार खोजि मुनि-आश्रम डारे ॥
जहाँ भयो संदेह तहाँ रहि काल बितायो ।
तऊ न नैसुक खोज राजनन्दन कौ पायो ॥

(२७)

तव चर-निकर निरास सबै बिधि साहस हारी ।
आय द्वारिका माहिं भूप सौं गिरा उचारी ॥
"कोऊ बच्यो न थान नाथ ! उत्तर दिसि माहीं ।
जाको हम निज दृगनि देखि आये चलि नाहीं ॥

(२८)

चपा चपा करि सकल भूमि भूधर अबरेखै ।
सुन्यो न ताको नाम कहूँ, अरु ताहि न देखै ॥
काहू विधि सौं समाचार वाको नहिं पाये ।
तब निजमुख मसि लाय हिये पाहन धरि आये ॥

(२९)

पै मुखिया नहिं फिरचो हमै प्रभु पास पठायो ।
औ दोऊ कर जोरि यहै संदेस सुनायो ॥
तीनि मास मँह जु पै कुमारहि खोजि न पैहौं ।
मानसरोवर फाँदि आपने प्रान गवैहौं" ॥

(३०)

अस कहि चढ़ि बर बाजि गयो उत्तर दिसि माहीं ।
हम लै दुखद-सँदेस नाथ! आये तुम पाँहीं ।।
सो लैहै सुधि अवसि कछू यामे संदेह न ।"
अरु कहि बल पद नाय गये चर निज निज गेहन ।।

(३१)

उत उत्तर दिसि जाय सोनपुर चर नियरान्यो ।
फरक्यो दच्छिन बाहु सगुन गुनि हिय हरखान्यो ।।
सीतल मन्द समीर दियो मग-खेद निवारी ।
मन मँह अमित उछाह नगर दिसि चल्यो अगारी ।।

(३२)

निबसि अतिथि-गृह निसा सबै सुख सोइ बिताई ।
होतहि प्रात अन्हाय भाल दै तिलक सोहाई ।।
पहिरि रुचिर परिधान पाग केसरिया धारे ।
बाँधे कटि करबाल गयो इमि राज-दुआरे ।।

(३३)

द्वारपाल से कह्यो "भूप जस सुनि मैं आयौ ।
हौं ही राजकुमार चाकरी कौ मन लायौ ।।"
सो सुनिके प्रतिहारि भूप के सन्मुख-जाई ।
तेहि लै आवन काज लई नरनाह-रजाई ।।

(३४)

सो लै गयो लिवाय बान-समुहे तेहि काहीं ।
गयो भूप के निकट हिये रंचक भय नाहीं ।।
नरपति-पद सिर नाय ब्यवस्था सकल बखानी ।
'सौंपिय मोहि कछु कठिन काज' बोल्यो मृदु बानी ।।

(३५)

लखि तेहि परम बिनीत खरो जोरे जुग पानी ।
धीर बीर गम्भीर युवहिं सब लायक जानी ॥
दीन्ह्यो बहुरि निदेस सबै बिधि धीर बँधाई ।
'अंतःपुर के द्वार करौ रच्छा तुम जाई' ॥

(३६)

नृप अनुसासन मानि आपु अन्तःपुर-द्वारे ।
पहरौ लाग्यौ देन छद्मबपु कौ इमि धारे ॥
जानत रह्यौ रहस्य अमित दासिन सनमानी ।
यहि बिधि लिये हवाल सबै तहँ को चर जानी ॥

(३७)

सोनितपुर इमि निवसि भेद तहँ को सब जान्यो ।
पुनि प्रभु-काज सँवारि देस चलिबौ मन ठान्यो ॥
नृप सौं लै अवकास चरन-पंकज सिर नाई ।
गवनेउ चर निज नगर अमित मन मोद मढ़ाई ॥

(३८)

चल्यौ द्वारिकापुरी पवन गति सौं हय हाँके ।
या बिधि लाँघत जात सरित-सर-सैलनि बाँके ॥
बहुरि सभा-मधि गयो जहाँ बैठे यदुराई ।
बल-हरि-पद-सिर नाय बैठ निज आसन जाई ॥

(३९)

लखि प्रमुदित मन ताहि तुरत बल हिय अनुमान्यो ।
लायो चर सुभ समाचार निहचै जिय जान्यो ॥
लहि हरि को संकेत बहुरि जोरयो जुग पानी ।
सोनितपुर की कहन लग्यो मन मुदित कहानी ॥

(४०)

"कहँ निसर्ग दुर्बोधि नीति नृप की छल-बोरी ।
कहँ मो सरिस अबोध चरन की गति मति थोरी ।।
पै दुर्गेय चरित्र बान अन्तःपुर - वारे ।
जान्यो मैं जदुनाथ सकल परताप तुम्हारे ।।

(४१)

गयो सोनपुर कुँवर बान भूपति-रजधानी ।
राख्यो ताहि नृप-सुता राजमन्दिर सनमानी ।।
ताकी प्रिय सहचरी नाम जाको चितरेखा ।
लै गई ताहि उड़ाय गगन पथ काहु न देखा ।।

(४२)

बानासुर हू नाथ ! सुता को भेद न जानत ।
है अनिरुद्धहिं बहुत राज - तनया सनमानत ।।
तासु नेह मैं नह्यौ कुँवर सुधि सकल बिसारी ।
प्रमुदित खेलत रहत ताहि सँग पंसासारी ।।

(४३)

राजनीति यह कहत होत चर नृप के लोचन ।
कटु अथवा मृदु कहौं सुनिय तेहि त्यागि सकोचन ।।
होत न कहुँ हित बैन सदा स्रौननि सुखकारी ।
स्रवन सुखद तिमि बचन सकत नहिं काज सँवारी ।।

(४४)

है चर सोई अधम साधुमत जो नहिं राखै ।
नृप सों करै दुराव और की औरहि भाखै ।।"
चर बर इमि मन सोचि नेकहू सकुच न लायो ।
कहन लग्यो अरि-बिभव आपु जैसो लखि आयो ।।

(४५)

"सोनितपुर नग-अंक लसत अमरावति जैसो ।
त्यों ही नृप-नय-निपुन बान सुरपति सम तैसो ॥
सुरगुरु-सम गुरु सुक्र सचिव दिगपति-सम गोहत ।
बान-सभा इहि भाँति त्रिदसपति सभा बिमोहत ॥

(४६)

केवल चित के चोर, फलन ही में गदराई ।
राज-काज के हेतु रही तहँ डाँक सोहाई ॥
रह्यो सोख ही रंग, दोष त्रयदोषनि पाहीं ।
पातन ही मैं खरक, अधोगति मूलनि माहीं ॥

(४७)

रहे त्रिसूलहिं सूल, भिषग-गेहनि खल देखे ।
पर - नारी - कर परस करत तिनहिन अवरेखे ॥
जुआ बृषभ के कन्ध, जतिन-कर दण्ड सोहाहीं ।
नर्तक-गन मैं भेद, बान - नृप-सासन माहीं ॥

(४८)

यदपि कबहुँ नहिं बान चोपि कै चाप चढ़ावत ।
औ कबहूँ नहिं रोषि रोष रेखा रुख लावत ॥
केवल गुन-अनुराग मानि राखत हित तासन ।
निज सिर धारत माल सरिस सब भूपति-सासन ॥

(४९)

सकल राज के काज आपु नृप - सुवन निहारत ।
सत्रु मित्र सम भाव न्याय मैं भूप बिचारत ॥
गुरु-आयसु लहि लग्यो रहत मख-साधन माहीं ।
प्रजानुरंजन करत रहत नरपाल सदाहीं ॥

(५०)

ये ते दिवस निबास कियो सोनितपुर माही।
राजनीति मैं छिद्र लख्यौ एकहु पै नाहीं ॥
देस-काल - बल देखि नाथ! इमि मंत्र दृढ़ाओ।
सोनितपुर सों सुवन बान-नन्दिनि - युत लाओ ॥

(५१)

राज-सभा मधि या बिधि सौं,
असुराधिप को बल बैभव गाई।
औ अनिरुद्ध-उषा के विनोद-
विहारनि की सबै बात सुनाई ॥
मौन गहे चर बैठि गयो,
निज आसन पै सबकौ सिर नाई।
जानि बिलम्ब तबै बल नै,
तेहि कौ गृह जान कौ दीन रजाई ॥

पञ्चदश सर्ग

सार

(१)

दूजे दिवस प्रात ही हलधर राज - सभा मँह आये ।
कुल - गुरु, सेनापति, सरदारनि, सचिवनि सबन बुलाये ।।
अन्धक, भोज, बृसनि कुल के जे अपर अमित रनधीरा ।
इमि बल कौ आदेस पाय तहँ आये सब जदुबीरा ।।

(२)

हरि - पद - पंकज सीस नाय निज आसन बैठे जाई ।
मुख्य सचिव तब सभा बुलावन हेतु कह्यो समुझाई ।।
बोल्यो "एक चर सोनितपुर से लायो कुँवर - सँदेसो ।
सबै भाँति अनिरुद्ध कुसल हैं जनि हिय करिय अँदेसो ।।

(३)

बानासुर की सुता-सहेली लै गइ ताहि उड़ाई ।
अरु तेहि निज अवरोध - गेह मैं राख्यौ बाम दुराई ।।
निबसत कुँवर असुर - परिरच्छित नृप - अन्तःपुर माहीं ।
सान्त उपायनि तेहि आवन की कोउ आस अब नाहीं ।।

(४)

मन्त्र स्वतन्त्र आपनो या लगि दृढ़ बिचारि कै दीजै ।
आवैं बाल द्वारिका कौ फिरि सोई सब मिलि कीजै" ।।
सो सुनि सकल सभासद-जन - गन हरषित हिय मुसकाने ।
मानहुँ दिनमनि उदित समै लखि पंकज सर बिकसाने ।।

(५)

कह्यौ सात्यकी "कहा मंत्रिबर यामें है कठिनाई ।
चलिए प्रात होत सोनितपुर उदभट कटक सजाई ।।
लीजै बेगि नाथ को आयसु कीजै नेकु न देरी ।
मारौं सकल दैत-बंसिन कहँ बान - नगर कौ घेरी ।।

(६)

तब हरि कह्यो "बीर सात्यकि नै अभिमत मंत्र बिचारो ।
दैत्य-निकर ते बाल - मुक्ति को और नहीं कोऊ चारो ।।
बैठे रहैं अमित बलधारी बबा पिता अरु भाई ।
परचौ रहै परबस पै बालक या मैं परम हँसाई" ।।

(७)

कह्यौ रुक्म हरि बानि तुम्हारी बोलत बढ़ि बढ़ि बातैं ।
जानत नाहिं दैत्यबंसिन की महा घोर रन - घातैं ।।
निदरि सक्र को बज्र हरायो जिन षटमुख धनुधारी ।
लई हती जिन अमरावति की लूटि कराय अगारी ।।

(८)

जात पताल पिता - पद - परसन बान अमित बलरासी ।
धारि धरा निज हाँथ सेस के सीसनि देत उसासी ।।
अबहूँ उस्न रुधिर की धारा बहत दैत्य - तन माहीं ।
तिन से लरै कौन जदुबंसी सो मोहि दीषत नाहीं" ।।

(९)

सुनि इमि परुष बैन मातुल मुख साम्त्र अमित मनमाखी ।
बलकत बैन सरोष सभा - मधि तमकि उठो इमि भाखी ।।
लोचन अरुन बंक भृकुटी अरु परिघ भुजा दोउ फरकी ।
अरु ताही सँग लोह - कवच की करी करी सब करकी ।।

(१०)

"जग जदुबंस-बिभूषन पूषन जहँ कहुँ करत उजेरो ।
नहिं रहि जात अतंक नैकु तहँ कैसेहु तम अरि केरो ॥
बीर धुरीन धीर जादव जन लसत सभा के माहीं ।
पै तिनके गौरव की मातुल ! कानि करत कछु नाहीं ॥

(११)

भूलि गयो जदुबंसिन को बल भयो न काल घनेरो ।
कीन्ह्यो ब्याह बड़े भैया को मथ्यौ मान इन केरो ॥
निदरि पिता सिसुपाल संघातिन गह्यो मातु को पानी ।
पै मातुल को सुधि नहिं आवत बोलत अनुचित बानी ॥

(१२)

पितु-पद-सपथ कहत पन करि कैं जो निज तेज सम्हारौं ।
सकल सहाय सहित बानासुर निदरि समर मँह मारौं ॥
अपने क्रोध कृसानु माहिं सब सोनितपुरहि जराऊँ ।
जम दाढ़न कौ फारि बन्धु अरु भाभी को गहि लाऊँ ॥"

(१३)

बिहँसि कह्यो प्रद्युम्न "जदुन की यहै रीति चलि आई ।
टीक्यो चरन अँगूठा सो जिन तिन पाई प्रभुताई ॥
छलि कै गई उड़ाय बन्धु को बाना-सुत-सखि कोई ।
जदुबंसिन की याते जग मैं कहाँ हँसाई होई ॥

(१४)

अब लौं समाचार भ्राता कौ कौहू बिधि नहिं पाये ।
ब्याज-सहित बदलो सब वाको देखौ लेत चुकाये ॥
अकिलो जबै समर अंगन मैं बान सरासन जोरौं ।
निसित बिसिख की प्रबल धार मैं बान-चमू-चय बीरौं ॥"

(१५)

कह यादव-सेनप हलधर सौं "जानी बान बड़ाई।
हो तो बड़ो बीर तौ पितु को लावत क्यों न छुड़ाई॥
कीजै नेकु बिलम्ब नाथ! जनि दीजै मोहि रजाई।
बाँध्यो बटु नै बलिहि आजु मैं बानहिं बाँधौ जाई"॥

(१६)

सुनि इमि बलकत बचन सबनि के उद्धव तिनहिँ निवारी।
परम सान्त गंभीर गिरा इमि बोल्यो बलहिं निहारी॥
"नाथ! असुर संघाती ऐसे सहजहि बधे न जैहैं।
अपर पहारी भूप समिटि के तासु सहायक ऐहैं॥

(१७)

रोगनि माहिं प्रबल जिमि जग में राजछमा कहँ, मानौ।
तैसेइ आपु दैत्य-बंसिन महँ बानासुर को जानौ॥
चलिए अवसि नाथ! सोनितपुर गज-रथ-बाजि सजाई।
देखिए किते सहायक वाके जुरत तहाँ पै आई॥

(१८)

तब निज पच्छ-प्रलाबल कौ गनि करिय समर मनरोखी।
कै निज सुवन छुड़ावन कै हित सन्धि सोचिए चोखी॥
बिन सोचे समझे फल आगम करत काज बुध नाहीं।
सफल होत नहिं बिना बिचारे काज कियै जे जाहीं॥

(१९)

अवसि सैन निज साजि लीजिए सोनितपुर को घेरी।
अरु अनिरुद्ध छुटावन के हित कीजै समर दरेरी॥
जे भय मानि देत कर तेऊ भूप उतै चलि ऐहैं।
होतै युद्ध-अरम्भ सत्रु अरु मित्र दोऊ खुलि जैहै"॥

(२०)

इमि नयनिपुन साधु उद्धव नै जब नृप-नीति बखानी ।
बिहँसे सारँगपानि बात पै बल हि न नैकु सोहानी ।।
बोल्यो बलकि "बहुत दिवसनि सौं जदुकुल की तरवारी ।
लही नाहिं करि-जलद-घटा पै छटा दामिनी वारी ।।

(२१)

अब यह किलकि समर-चण्डी लौं असुरन के दल खाई ।
काटि कटीली कटक काल के देइ कलेऊ जाई ।।
यहि बिधि विमल बंस अवतंसी रहत काछनी काछे ।
जुआ जुद्ध मैं भूलिहु कबहूँ धरत नहीं पग पाछे ।।

(२२)

या ते सारँगपानि यहै अनुरोध निदेस हमारो ।
रन-हित सजैं सबै जादव फिरि प्रगटै भानु उजारो ।।"
युद्ध-सचिव अरु सेनापति के बल इमि आयसु दीन्ह्यों ।
पुनि करि सभा बिसर्जन हरि-सँग गवन भवन के कीन्ह्यों ।।

(२३)

चहल पहल सिगरी निसि बीती नींद परी नहिं काहू ।
राजकुमार छुरावन के हित सब हिय अमित उछाहू ।।
परो निसाननि घाव प्रात ही सेन सोनपुर धाई ।
दहल्यो कमठ, सेष फन काँप्यौ रबि रज गयो छिपाई ।।

(२४)

करत सिबिर निसि माहि प्रात ही पुनि उठि करत पयानो ।
चलत चलत या बिधि केतिक दिन सोनितपुर नियरानो ।।
लसत कुधर के उच्च स्रंग पर बानासुर रजधानी ।
ताके गगन - परस - मन्दिर पै अरुन धुजा फहरानी ।।

(२५)

बाहर नगर पवन-जल-थल को जहँ सब भाँति सुपासू ।
सकल सैन ठहराय तहाँ ही हलधर कियो निबासू ।।
होतहि प्रात सिबिर मैं बल नै अक्रूरहिं बुलवाई ।
अरु तिनही के हाँथ बान ढिंग दियो सँदेस पठाई ।।

(२६)

"करि बहु कपट मंत्र-बल लीन्हों राजकुमार चुराई ।
होत कहा बानासुर राउर कुल याही मनुसाई ?"
डारि देहु याते ऊषा की राजकुँवर सँग फेरी ।
बधू भई तनया नृप तेरो अब जदुबंसिन केरी ।।

(२७)

या ते भूप अनत दुहिता को ब्याहन कौ न बिचारौ ।
सम्बन्धी के नाते येतो मानहु कह्यौ हमारौ ।।
भयो कृतारथ दैत्य-बंस सब हम सौं जोरि सगाई ।
ब्याहौ सुता चरन परसौ अरु राखौ सदा मिताई ।।

(२८)

कबहुँ करिनि की ओर सकत लखि सठ सियार को जायो ।
त्यौं सिंहिन देखन को साहस कबहुँ ससा कहँ आयो ।।
सकत राहु कहुँ सम्भु-सीस के ससि पै दीठि लगाई ।
अथवा पुरोडास को रासभ सकत कतौ हूँ खाई ।।

(२९)

निज बल-दर्प माहिं परिकै जो मानौ कह्यौ न मेरो ।
निहचै अन्त आय गौ भूपति सकल दैत्य-कुल केरो ।।
रच्छा करौ प्रजा परिजन की बिमल बुद्धि मन धारौ ।
अथवा आय समर-अंगन मैं स्वागत करौ हमारौ ।।

(३०)

लै अक्रूर सँदेसो बल को गयो बान - रजधानी ।
ह्वै कै निपट निसंक सभा मैं नृप सों कह्यौ बखानी ॥
सुनि इमि अजुगुत बैन तासु मुख अति अचरज मन मानी ।
बोल्यो जलद - गंभीर - घोर-रव भूप कड़कि इमि बानी ॥

(३१)

"कब से बढ़े कहौ जदुबंसी राजा कबै कहाये ।
बल के पिता मातु कारागृह केते वर्ष बिताये ॥
जोतत रहें खेत हलधर, हरि रहे चरावत गाई ।
चोर कर्म मैं निपुन दियो हरि चोरी मोहि लगाई ॥

(३२)

ह्वै के ग्वाल - बंस के बालक करत लाज कछु नाहीं ।
कस्यप-कुल-कन्या-कर चाहत हिय नहिं नेकु सकाहीं ॥
दै छछिया भरि छाँछ पिता को बृज तिय नाच नचायो ।
पै त्रिलोकपति हू को पितु ने नीचो हाथ करायो ॥

(३३)

भटकत रह्यो कंस के भय सों सब बृजमण्डल माहीं ।
जरासन्ध के सन्मुख रन मैं कबहूँ आये नाहीं ॥
भाग्यो त्यागि प्रजा - परिजन को कालयमन के आगे ।
कब से समर - धीर जदुबंसी बनन धरा पै लागे ॥

(३४)

जन्म जन्म ते यह चलि आई सभ्य जगत की नीती ।
करिए सदा बराबर ही मैं व्याह बैर अरु प्रीती ॥
कहँ देवन के बन्धु सबै हम अमरपुरी अधिकारी ।
कहँ ग्वालन की जाति अधम जग गाय चरावनवारी ॥

(३५)

होतहि प्रात राज - सीमा कौ जो पै त्यागि न जैहैं ।
तो पै निज दुस्साहस कौ फल भली भाँति सौं पैहैं ।।
जदुबंसिन - हित लागि तिन्हैं हम बार बार समुझावत ।
निबल अरिन पै दैत्यबंस के बीर न तीर चलावत" ।।

(३६)

लै अक्रूर बान - संदेसो बेगिहि बल ढिंग आयो ।
अरु सब सत्रुनगर की गाथा बिधिवत हरिहि सुनायो ।।
ह्वै है अवसि जुद्ध उठि प्रातहि सब ही हिये दृढ़ायो ।
होतहि अरुन - उदय हलधर नै सब जदुसेन सजायो ।।

(३७)

डंका बजत उभय - दिसि - बीरनि बाहन - अस्त्र सजाये ।
निज निज तुंग धुजा फहरावत सिमिटि समर मैं आये ।।
क्रौंचब्यूह रचि बान - चमूपति भयो चंचु पै ठाढ़ो ।
जूझन - हित जदुबंसिन सौं रन अति उछाह हिय बाढ़ो ।।

(३८)

इत प्रद्युमन रचि गृद्धब्यूह कौ सेन कियो सब ठाढ़ी ।
सुतहि छोरावन काज हिये महँ अमित लालसा बाढ़ी ।।
हरि हलधर दोऊ पच्छनि पै आपु चंचु पै सोह्यौ ।
पुच्छभाग कौ साम्ब सम्हारयो लखि सुरनाथ बिमोह्यौ ।।

(३९)

पूरयो संख नाद सब बीरन पुनि निज धनु सन्धान्यो ।
बिषम नराच जोरि कै चापहिं कोपि स्रवन लौ तान्यो ।।
तौ लगि स्रंगीनाद अमित - रव सत्र कँह परयो सुनाई ।
अपर अदित्य - खण्ड मनु नभ सौं आवत परयो लखाई ।।

(४०)

राजत वृषभ, लिलार - चन्द कौ जटा - जूट कसि बाँधे ।
लीन्हें उग्र त्रिसूल पानि मैं डारे सारंग काँधे ॥
बच्छस्थली बिसाल परिघ भुज गरे अहिन की माला ।
उठत तृतीय नेत्र ते ज्वाला उत्तरीय हरि - छाला ॥

(४१)

जानि दास पै भीर सबै गन - गनपति संग लिवाये ।
करन सहाय आपने जन की सिवसंकर चलि आये ॥
हर कौ निरखि तुरत बानासुर धायो स्यन्दन त्यागी ।
परसि जुगुल सिवचरन सरोरुह भयो आपु वड़भागी ॥

(४२)

पूछ्यो बनि अजान हर "भूपति ! का पै सैन सजायो ।
काँपै रूठो भाग चोपि तुम जापै चाप चढ़ायो" ॥
कह्यो बान "प्रभु ! आजु इतै मिलि जदुबंसी चढ़ि आये ।
चाहत व्याह उषा को सुत संग चोरी मोंहि लगाये" ॥

(४३)

हर कह "बान ! इन्है नहिं जानत ये त्रिलोक के स्वामी ।
कैसे लरौ सामुहे इनके बिधि इनको अनुगामी ॥
याते मतौ हमारौ येतो मानि अवसि सुत ! लीजै ।
बिधिवत मार - कुमारहिं हठ तजि व्याहि उषा कौ दीजै" ॥

(४४)

हर - पद - पंकज परसि बान कह "राउर नाथ ! रजाई ।
सदा सीसधरि कीन्ही मैंने अजहूँ मेटि न जाई ॥
पै वे सेन साजि चढ़ि आये औ रन हमें प्रचारैं ।
ह्वै के दास आपके अब हम कैसे साहस हारैं ॥

(४५)

चाहत नाथ सन्धि तौ पहिले उनहिं देउ लौटाई ।
छाड़ौं जुद्ध-भूमि नहिं तब लौं प्रभु-पद कोटि दुहाई ।।
पावौं समर वीर - गति चाहै पाँव न पाछे दैहौं ।
रन में पीठ दिखाय सत्रु कौ कुलहि कलंक न लैहौं ।।"

(४६)

सुनिके बान बचन तुरतहि हर जदुसेना महँ आये ।
हरि-बल निरखि सम्भु को आवत निज मन मोद बढ़ाये ।।
बल सों बिहँसत कह्यो "दास पै नाहक कियो चढ़ाई ।
कुँवरहिंबेगि छोराय उषा - संग दैहौं ब्याह कराई ।।"

(४७)

निज कर गह्यो लगाम बाजि की स्यन्दन दियो घुमाई ।
पूरयो संख धुजा लखि जदु - जन चले सिबिर हरखाई ।।
रन तजि जात जबहिं हरि बल को बानासुर लखि लीन्ह्यो ।
सेना सकल समेटि मुदित मन गवन भवन कँह कीन्ह्यो ।।

(४८)

निज गृह जाय बुलाय कुमारहिं पट - भूषन पहिराई ।
दै अनेक उपहार दियो तेहि पितु - ढिंग मुदित पठाई ।।
कियो साथ अस्कन्द कुमारहिं स्यन्दन सुघर सजाई ।
या बिधि सौं अनिरुद्ध मिल्यो पुनि जदुबंसिन सौं आई ।।

(४९)

परस्यो चरन प्रथम कुलगुरु के बल हरि के पग लागी ।
परयो पाँय प्रद्युम्न पिता के भेंटयो साम्ब सभागी ।।
ढाढ़ो लखि अनिरुद्ध कुमारहिं जदुगन मन अनुरागे ।
सजल नैन मुक्तामनि की सब करन निछावरि लागे ।।

(५०)

पूँछै कुमार सौं बाल-सखा मिलि,
"आपु हरे गये औ तिय पाई।
पैं हम लोगनि या बिधि सौं,
सहसा तुम दीन्हों कहाँ बिसराई।
भूलि ही जात सबै घरबार है,
जो पै नई कोऊ पावै लुगाई।
याते न कीजिए नेकु बिलम्बहि,
दीजै हमैं मँगवाय मिठाई"॥

षोडश सर्ग

रूपमाला

(१)

बढ़्यो जदुजन हरख इमि अनिरुद्ध कौ अवरेखि ।
सिन्धु तुंग तरंग नभ जिमि बिमल बिधु कौ देखि ।।
मिलत कोऊ धाय तिहिं दरसाइ अति अनुराग ।
मुदित मन कोऊ सराहत, कान्ह बल को भाग ।।

(२)

जदु-सिबिर महँ रह्यो या बिधि छाय अमित उछाह ।
सबै चाहत लखन अब अनिरुद्ध-उषा-बिबाह ।।
कालि लौं जे धरत हिय मैं सत्रुता के भाव ।
दैत्यपति सौं मिलन कौ हिय बढ़्यो तिनके चाव ।।

(३)

गिरि-सिखिर पै अस्व आरोही दिखान्यो एक ।
ताहि आवत बल-सिबिर मैं लगी बार न नेक ।।
द्वारपाल बिलोकि ता कहँ कान्ह आयसु पाइ ;
लै गयो बर बीर को बल-बीर निकट बुलाइ ।।

(४)

कर कमल जुग जोरि कीन्हो बलहि प्रथम प्रनाम ।
नाइ प्रभु-पद-माथ लाग्यो कहन बचन ललाम ।।
"नाथ ! आवत मंत्रिवर आचार्य कौ लै साथ ।
लग्न गै कीजै सबनि कँह आपु सपदि सनाथ" ।।

(५)

हरिहि इमि संदेस दै निज बाजि पै चढ़ि बीर ।
गयो सोनित-नगर चर जिमि चाप छूट्यो तीर ॥
इतै आवन लग्न कौ सुनि मुदित सकल समाज ।
सचिव-स्वागत हेतु सब मिलि सजन लागे साज ॥

(६)

सिबिर मध्य हरी जरी कौ तन्यौ बिमल बितान ।
जटित हीरन जासु छति नभ-नखत की उपमान ॥
तहँ धरे गज-दन्त के बर मञ्च केतिक लाय ।
मनहुँ बसुधा पै दई बिधि सुधा सब बगराय ॥

(७)

झालरैं करि-कुम्भ-सम्भव-मोतियन की लाय ।
लिखे स्वागत बिबिध रंगन रहे चारु सजाय ॥
रत्न एते निरखि तँह मन रह्यो यह अनुमानि ।
रहि गयो बस अम्बुनिधि मैं आज केवल पानि ॥

(८)

मंच-अवलिनि बीच तँह द्वैग मंच लसत नवीन ।
मनहुँ अहिपति नीर-निधि तें कढ़ि जुग फन दीन ॥
बिपुल परदे मखमलनि के रहे द्वार सँवारि ।
सुरप-चाप-बिडंबिनी-छबि धरत बंदनिवारि ॥

(९)

तीसरे ही पहर तैं तहँ जुरन लागे भूप ।
जटित हीरा रतन सौं बर बसन साजि अनूप ॥
कुसुम-सायक मैन मानहु जगत जीतन काज ।
जदु-कुमारनि ब्याज राजत साजि सकल समाज ॥

(१०)

यथा अवसर कान्ह-बल हू तहँ बिराजे आय ।
मनहुँ जुग बिधु ब्योम की छबि अमित रहे बढ़ाय ।।
अपर-नृप-नखतावली लौं दै अमन्द उजास ।
जदु-सभा मानहु करत आकाश कौ उपहास ।।

(११)

मनि प्रदीपन करति भूप-किरीट-छबि अतिमन्द ।
दुरत घन घनपटल माहिं निहारि नृप-मुख चन्द ।।
सरस रागन सुघर सहनाई रही तहँ बाजि ।
उग्रसेन महीप बर को चित्र राख्यो साजि ।।

(१२)

इतै दैत्य-महीप को गृह सज्यो बहु छबिधाम ।
मनि प्रदीपनि की लसति चहुँ पाँति अति अभिराम ।।
बान - भूपति के सगोती - सुहृद - मंत्रि - समाज ।
सजे भूषन बसन राजत जनु अपर सुरराज ।।

(१३)

सौध पै कलधौत के तहँ लसत बनिता बृन्द ।
कल्पबेलिनि की मनौ सोभा बढ़ावत चन्द्र ।।
सजे दिब्य दुकूल गातनि मधुर गावत जात ।
रूप जिनको हेरि निज हिय देव-तीय लजात ।।

(१४)

सुक्र आचारज कुभन्डक लग्न को लै साज ।
आपु गवने सिबिर कौ जहँ लसत जदुकुलराज ।।
तिनहिं आवत देखि सात्यकि साम्ब प्रनति देखाय ।
लै गये तिनकौ मुदित मन कान्ह निकट बुलाय ।।

(१५)

नाय हरि-पद माथ मंत्री लग्न दीन्हो धारि ।
अर्ध आसन पै लियो बल सुक्र को बैठारि ॥
मुदित देवनि पूजि दीन्हों तुरत लग्न चढ़ाय ।
कह्यो "द्वारे-चार हित अब चलिए जादवराय" ॥

(१६)

बन्दि गौरि-गिरीस बारन चढ़े तब बलराम ।
कान्ह प्रदुमन साम्ब सात्यकि चढ़े अस्व ललाम ॥
बैठि सिबिका मैं चल्यौ अनिरुद्ध गुरु पदनाय ।
साजि वाहन संग गवन्यो नृपनि को समुदाय ॥

(१७)

लेन अगवानी गये हर धरि मनोहर रूप ।
चले जुगुल कुमार हू धरि मार-भेष अनूप ॥
सचिव-सुहृद-समूह प्रमुदित कान्ह-बलहि जुहारि ।
बाल कौ गहि पानि-पंकज लियो अवनि उतारि ॥

(१८)

पाँवड़े महि परन लागे धारि तिन पै पाँय ।
त्यागि बाहन प्रमुख जदुजन चले प्रमुदित जाँय ॥
बान कै "समधोर" हरि, बल, कौ भुजा भरि भेटि ।
दियो गज-मनि-माल आनँद मनहु अमित समेटि ॥

(१९)

लवा बरसावन लगीं तब सौध सौं बर नारि ।
कलित-कोकिल-कण्ठ सौं पुनि गायकै मृदु गारि ॥
आरती अनिरुद्ध की करि अर्घ दै तब सासु ।
करी परछनि तियनि मिलिकै भयो हास बिलासु ॥

(२०)

द्वारवार समाप्ति जदुजन सिबिर महँ पुनि आय ।
कियो भोजन बिबिध बिधि बिसराम पुनि सुख पाय ।।
होन लाग्यो गान बाजे बीन मुरज मृदंग ।
निरखि गायन-निपुनता गंधर्व कौ मद भंग ।।

(२१)

उतै मनिमय पाट पै बर बधू कौ बैठाय ।
कलस थाप्यौ सुक्र तहँ पुनि नवो ग्रहनि बुलाय ।।
बहुरि राजकुमार कौ तिन ग्रन्थि-बंधन कीन्ह ।
अनल को प्रगटाय ता महँ सबिधि आहुति दीन्ह ।।

(२२)

हबि-समी-पल्लव-लवा-घृत-धूम उठ्यो अपार ।
लग्यो लोयनि माहि तिय की बही अँसुवनि-धार ।।
मनहु लावनिता जबै बर गात मैं न समानि ।
बही अँसुवनि ब्याज सौं अँखियानि के मग आनि ।।

(२३)

पूजि जामाता-चरन सह बाम बान महीप ।
पुनि बिरोचन-तीय जुत पद गहे आय समीप ।।
पिय-वियोगनि-छीन बलिबिन्ध्या तहाँ पुनि आय ।
पाँय पूज्यो प्रेम सौं अँसुवा अमित बरसाय ।।

(२४)

भरत भाँवरि अनल चहुँदिसि बधू बर यहि भाँति ।
मेरु को जनु देन फेरचो मुदित मन दिन राति ।।
राजबंसनि के पुरोहित करत साखोच्चार ।
लखत हरषित हीय सब मिलि इमि बिबाह-बहार ।।

(२५)

पकरि बर कौ पानि पंकज कछुक मृदु मुसकाय ।
लै गई सखि तिनहि हास अबास माहिं लिवाय ॥
बाल-बालम कर सरोजनि एक साथ मिलाय ।
मनहुँ दम्पति-प्रीति या मिसि दियो आलि दृढ़ाय ॥

(२६)

करि प्रथम सहबास बितये तिन कितै दिन रात ।
तऊ प्रेमिन को हियो नहिं काहु भाँति अघात ॥
नवल दम्पति कौ सुनो है कतहुँ कोउ परितोख ?
होत प्रेम-पयोधि की है कतहुँ नाप न जोख ॥

(२७)

छुवत तिय कौ पानि पिय कौ कण्टकित भौ गात ।
भई सुन्नांगुलि बधू कछु दसा बरनि न जात ॥
मनहु मदन-महीप-मनि मन मानि अति अनुराग ।
कियो तिन मैं आपनी चित-वृत्ति को समभाग ॥

(२८)

अरि-सँहारन माहिं अति पटु रह्यो बर को पानि ।
बधू कर-कंचन-प्रभा को हरत करत न कानि ॥
बान नृप के राज इन कहँ सकत को अवराधि ।
लियो मण्डप माहि याते कुसनि करकस बाँधि ॥

(२९)

पाय सखि-संकेत बाम सरोज-दाम सँभारि ।
दई कम्पित करनि सौं अनिरुद्ध के गर डारि ॥
परत वाके कण्ठ बाढ़चो बाल-बदन-बिकास ।
मनहुँ उषा-कुमारि की लघु-भगिनि कौ भुज पास ॥

(३०)

दियो सिंदुर उषा-सिर अनिरुद्ध तब हरखाय ।
भाँति काहू कबिन पै उपमा कही नहिं जाय ।।
मनहु अरुन पराग कहँ अहि कमल-कोष सँभारि ।
अमिय पावन काज सौं बर बिधुहिं रह्यो सँवारि ।।

(३१)

इमि बिबाह समापि आयो कुँवर पुनि जनवास ।
सखागन मिलि करत तासों बिबिध-बिधि परिहास ।।
सकल निसि जागरन सो हैं अरुन जाके नैन ।
बाल आलस सों बलित ह्वै करन लाग्यो सैन ।।

(३२)

छीन-छबि बिधु भयो नभ पै चढ़ी लाली आय ।
सूत मागध बिमल जदुकुल-बिरद रहे सुनाय ।।
त्यागि सेजनि जदुन कीन्हों प्रात-कृत्ति समाप ।
बजी सारंगी परी तबलानि पै पुनि थाप ।।

(३३)

साजि गायक तानपूरो भरे अति अनुराग ।
भैरवी आसावरी के लगे गावन राग ।।
आयगौ तौ लौ उतै नृप गेह ते जलपान ।।
भाँति भाँतिन के सलोने अरु मधुर पकवान ।।

(३४)

पाय षटरस दिब्य भोजन बहुरि खाये पान ।
सोय पुनि परयंक कीन्हों इमि दिवस अवसान ।।
त्यागि नींदहिं न्हायकै पुनि कियो फल आहार ।
गये देखन बहुरि जदुजन पर्वतीय बहार ।।

(३५)

लौटि डेरनि टहरिबे कौ कियो तिन स्रम दूरि ।
पियौ ठंडाई, बनी मानहु सजीवनमूरि ॥
कियो पुनि बिसराम या बिधि कछुक बीती बार ।
बोलि पठयो करन हित नृप तिनहि जीवनवार ॥

(३६)

गये जादव मुदित नृप गृह कछुक बीती राति ।
कनक थारनि में परोस्यो ब्यंजननि बहुभाँति ॥
लगीं गारी देन बनिता सुनत बल मुसुकात ।
करत अमित बिलम्ब प्रमुदित सरस ब्यंजन खात ॥

(३७)

तिनहिं पुनि अँचवाय दीन्हों सुधा-स्यंदित पान ।
कियो डेरनि ओर जदुजन हँसत हँसत पयान ॥
सोय निज पर्जंक पै प्रमुदित बिताई राति ।
करी पहुनाई नृपति नै कितिक दिन यहि भाँति ॥

(३८)

यदपि सब चाहत बराती नगर लौटन हेत ।
प्रेम-पासनि बाँधि बल कहँ बान जान न देत ॥
गर्ग तब कह सुक्र सन "तुम नृपहिं बेगि बुझाय ।
कन्यका की बिदा प्रातहिं सपदि देहु कराय ॥"

(३९)

जाय बान महीप के ढिंग सुक्र कह्यो बुझाय ।
"देस लौटनि-हित बरातहिं भूप ! देहु रजाय ॥"
मानिकै गुरु-बैन अन्त:पुरहिं दीन्ह कहाय ।
"बिदा ह्वै कै, प्रात जैहें नगर जादवराय ॥"

(४०)

पाय नृपति-निदेस जदुजन बिदा ह्वैबे हेत ।
जुरे सब मिलि आय निसि महँ बहुरि भूप-निकेत ।।
जथाथल बैठारि सब कहँ जल गुलाब सिंचाय ।
दियो चारु तमोल सबके अंग अतर लगाय ।।

(४१)

बहुरि दोऊ कर जोरि बल की बान बिनती कीन ।
"सोनपुर के प्रजा परिजन रावरे आधीन ।।
नेह को नातौ निबहियौ सदा हम सौं नाथ ।
दैत्य-कुल-मर्याद है अब प्रभु ! तुम्हारे हाथ ।।"

(४२)

अमित हय - गज - दास - दासी-धेनु-बसन नवीन ।
रत्न - मन - मण्डित-बिभूषन बान दायज दीन ।।
स्वादुमय अतिसै सलोने मधुर-मृदु - पकवान ।
भेंट औ पहिरावनी दै कियो नृप सनमान ।।

(४३)

प्रात जात बरात यह सुधि लही जब रनिवास ।
भई बिबरन तीय मनहुँ मयंक रहित उजास ।।
सुनत ऊषा की सहेली, गई इमि कुम्हिलाय ।
बनज-बन पै सघन पालौ परो मानहु आय ।।

(४४)

परी निसि नहिं नींद मातहिं, कहत "धिकधिक नेहु ।
चहौं जो बिधि करहु पै जग जुवति जनम न देहु ।।
सेइ पालि सुताहि जो पर - हाथ इमि दै देत ।
होत है मातानि कौ दुहितानि पै कस हेत ।।"

(५०)

या बिधि ब्याहि लै आये कुमारहिं,
 द्वारिका मैं अति आनँद छाये ।
आठहु सिद्धि नवो निधि कौ मनौ,
 संग उषा - कमलाहि के लाये ।
दान दियौ महिदेवन कौ,
 जग जाचक कौ इमि नाम मिटाये ।
होय भलो नव - दम्पति कौ,
 यहि लागि नरेस महेस मनाये ।।

सप्तदश सर्ग

रोला

(१)

ःमि दुहितहिं पहुँचाय, बान निज गेह पधारयो ।
परी सोक के सिन्धु भूप निज तियहिं निहारयो ॥
बेकल बिरोचन त्यागि धीर नैननि जल ढारत ।
पंजरगत सारिका उषा कहि जबै पुकारत ॥

(२)

ःर-पद-पंकज परसि बान बहु बिनय सुनायो ।
पुनि षटमुख कहँ भेंटि गजानन पग सिर नायो ॥
ःर धरि सीस असीस बान-सुत कहँ हर दीन्ह्यो ।
बहुरि बसह चढ़ि गमन सगन कैलासहिं कीन्ह्यो ॥

(३)

ःनि अन्तःपुर जाय बान रानिहिं समुझायो ।
'दैहौं उषहिं बुलाय' बेगि कहि धीर धरायो ॥
औरहि कौ धन होत धीय यह हीय बिचारौ ।
पठै ताहि पिय-गेह भयो उद्धार हमारौ" ॥

(४)

ःरयो रानि हिय धीर नाह-अनुसासन मानी ।
सुमिरि सुता-गुन-ग्राम बाम ढारत दृग पानी ॥
द्ध बिरोचन बिलखि रोय अँसुवा बरसावत ।
सुरति उषा की रही ताहि यहि भाँति सतावत ॥

(५)

होन लग्यो इमि सोक मातु-पितु-हिय तैं दूरी ।
सक्यो बिरोचन पै न भूलि निज जीवन-मूरी ॥
सिसुगन तें तेहि ललकि गोद लै समुद खिलाई ।
चख-पुतरी लौं राखि चाव सौं लाड़ लड़ाई ॥

(६)

बाँधि आस की पास भूप निज प्रानिन राख्यो ।
ऐहैं सावन माहि सुता यह मन अभिलाख्यो ॥
बिदा करावन काज बान अस्कन्द पठायो ।
पै ह्वै हीय निरास लौटि नृप-नन्दन आयो ॥

(७)

सुनि नहिं आई सुता बिरोचन लाग्यो ऊबन ।
करुना-पारावार माहिँ लाग्यो मन डूबन ॥
सिथिल भयो अभिलाष-बंध इमि भई निरासा ।
लोगन दीन्हीं त्यागि तासु जीवन की आसा ॥

(८)

दारुन-दीरघ-सोक भूप कौ औरहु बाढ़्यो ।
सुमिरि सुवन की दसा रहत निसि-दिन जिय दाढ़्यो ॥
करत जज्ञ सों काज जाय बाँधो सुत जाको ।
या जग मैं रहि गयो भला जीवन कहँ ताको ॥

(९)

छूटयो राज-समाज और बिरधापन आयो ।
समरथ भयो न बान रह्यो तब लौं दुचितायो ॥
सोनितपुर में आय जबै थापी रजधानी ।
कछुक कछुक तब कहूँ भूप-हिय-आगि बुतानी ॥

(१०)

तप साधन हित बनहिं जांन गुरु आयसु माँगी ।
करि आग्रह पग पकरि बान रोक्यो अनुरागी ॥
रहियो कछुक दिन और मोहिं नृप-नीति सिखैये ।
ब्याहि उषा स्कन्द नाथ! कानन तब जैये ॥

(११)

लखि बालक-अनुरोध भूप नहिं बनहिं सिधाये ।
सिव-पद-पंकज ध्याइ घरहि रहि काल बिताये ॥
गृह - कारज - जंजाल अपर चिंता बहुतेरी ।
कास, स्वास, अरु जरा लियो नरपति कहँ घेरी ॥

(१२)

दमा जात दम साथ कहत सब लोग लुगाई ।
दुर्बल नृप कहँ लियो काल गहि रोग दवाई ॥
कियो अमित उपचार देव-बैदनि मिलि दोऊ ।
पै निरोग करि सके नाहिं भूपति कहँ सोऊ ॥

(१३)

कह्यो बान सन "अमर नहीं कोउ या जग माहीं ।
होत रोग-उपचार मीचु की ओषधि नाहीं ॥
अब केवल नभ - गंग - बारि - तुलसीदल दीजै ।
अपर ओषधिन देन नाम बस भूलि न लीजै ॥

(१४)

चलन चहत सुरधाम प्रान ओषधि गहि राखत ।
याते कष्ट अपार होत यह सब जन भाषत ॥
अब करिकै संतोष अपर जनि मंत्र बिचारो ।
जात बबा परलोक आपु धीरज हिय धारो ॥

(१५)

सुनि अस्विनीकुमार-बैन नृप भयो उदासा ।
दियो छाँड़ि तब वृद्ध-बबा-जीवन की आसा ॥
चलत न कोऊ उपाय दैवगति गुनि हिय हारे ।
ह्वै निरास तब दैत्य-भूप बैठ्यो मन मारे ॥

(१६)

बढ़त स्वास कौ वेगि निसा सँग सबनि निहार्यौ ।
लखत बबा बेचैन बान अँसुआ दृग ढार्यो ॥
इमि लखि बैद्य बिहाल ताहि चन्द्रोदय दीन्ह्यो ।
घट्यो रोग को बेग खोलि नृप नैननि लीन्ह्यो ॥

(१७)

पुनि कछु करि संकेत बान-नन्दन बुलवायौ ।
एकटक ताहि निहारि नैन अँसुआ बरसायो ॥
फेर्यो सुत सिर पानि बान लखिकै हरखान्यो ।
पै अस्विनीकुमार अमित हिय मैं सकुचान्यो ॥

(१८)

धर्यो माथ पै हाथ लग्यो हिम सीतल सोई ।
सन्निपात सीताङ्ग पसीननि गात समोई ॥
देव-वैद्य कह "इन्हें मही पर लेहु उतारी ।
कौहूँ ढूँढ़े मिलत नाहिं नरपति कै नारी ॥"

(१९)

यह सुनि नृप कह बान तुरत महि पै पौढ़ायौ ।
एक घूँट जल दियो गरो कफ सौं भरि आयो ॥
खुले बिरोचन नैन और हुचकी एक आई ।
घूमी नृप की दीठि गईं अँखियाँ पथराई ॥

(२०)

या बिधि उत तनु त्यागि गयो सुरधाम विरोचन ।
करुनारस की मूर्ति लगी रानी हिय सोचन ॥
करत बिलाप - कलाप सबै घर लोग-लुगाई ।
पै न आँसु की बूँद भूप-जाया-दृग आई ॥

(२१)

समाचार सुनि गेह सुक्र आचारज आयौ ।
बहु बिधि सबनि प्रबोधि बान कहँ धीर धरायौ ॥
होतहि प्रात बनाय यान नृप कौ सव धारी ।
क्रिया करन सब चले चली नृपनारि पछारी ॥

(२२)

करि गुरु अमित उपाय रहे रानी-मन फेरत ।
जात सिंधु-दिसि सरित कोऊ सावन की घेरत ?
भूषन बसन सँवारि बाम सुरधाम सिधारी ।
सेवत पतिहिं सदैव त्रिजग पतिबरता नारी ॥

(२३)

दहन-जनित-तन-ताप तियहिं नहि उतो सतावत ।
बिरह बह्नि ज्यहि भाँति बाम को हियो जरावत ॥
कहा जगत सौं काज जात,जब पिय सुरपुर कौ ।
याही रह्यो बिचार भूप-जाया के उर कौ ॥

(२४)

इतै सरित ढिग जाय सबै चुनि चिता बनाई ।
चन्दन - अगर - कपूर और घृत - घट बहु लाई ॥
चढ़ी स्वर्ग - सोपान रानि धरि सव पद्मासन ।
लखि तिय-हिय-अभिलाष भयो प्रज्वलित हुतासन ॥

(२५)

लागी धधकन चिता पवन कौ बेगहिं पाई ।
अरु चढ़ि अनल-बिमान रानि सुर-सदन सिधाई ॥
लस्यो बाम कौ बदन तबै यहि भाँति अतूल्यो ।
मानहुँ पावक-पुंज माहिं पंकज कोउ फूल्यो ॥

(२६)

यहि बिधि क्रिया समापि न्हाय जल-अंजलि दीन्ह्यो ।
पुनि दसगात्र-बिधान बेद-स्रुति-सम्मत कीन्ह्यो ॥
भये सुद्ध दस दिवस बितै गुरु-आयसु पाई ।
दियो दान गज-बाजि - धरा-धन - भूषन - गाई ॥

(२७)

सोधि दिवस सुभ बहुरि बान बैठ्यो सिंहासन ।
लग्यो करन बहोरि पूर्व इव निज अनुसासन ॥
पै वा मैं नहिं लगत चित्त अवनीपति केरो ।
सहसा जग्यो बिराग बान हिय माँहि घनेरो ॥

(२८)

तब नृप सुतहिं बिबाहि राज सौंप्यौ कर ताके ।
भये नाँह अस्कन्द राजनन्दनि बसुधा के ॥
जा हित अनुचित करत काज अगनित नृप बालक ।
पितु-अदेस सौं बन्यो बाल ताको प्रतिपालक ॥

(२९)

कियो सुक्र अभिषेक भयो नृप बैरिन दुर्गम ।
ब्रह्म - छात्र धौं तेज किधौं अनलानिल-संगम ॥
भोग्यो दीरघ-बाहु नृपति पितु सौं लहि धरनी ।
होय न बल सौं खिन्न जथा ब्याही नव रमनी ॥

(३०)

ज्यौं चतुरानन संग मुदित राजत बरबानी ।
ज्यौं सोहत कैलास संग सिव संग भवानी ।।
ज्यौं सुरेस सँग सची, रमा हरि के सँग राजै ।
त्यौं अस्कन्दकुमार संग जाया छबि छाजै ।।

(३१)

भूधर चौदह भुवन बने हिम-नग-मदहारी ।
जिन पै सुकृति-बलाहक बरसत नित सुखबारी ।।
रिद्धि-सिद्धि-सम्पति सरित बड़ी अति सै उमगाई ।
करत कलित कल्लोल सोनपुर-सागर आई ।।

(३२)

जा बर बंस प्रसंस प्रजा मनि - मानिक ऐसी ।
सोम-कला सौं बढ़त भूप जस कीरति तैसी ।।
कतहुँ न दुख कौ लेस चहूँ सुख सम्पति रूरी ।
नित नव मंगल मोद रहे सोनितपुर पूरी ।।

(३३)

सब बिधि रच्छित प्रजा जासु के सासन माहीं ।
काहू दिसि सौं रह्यो कतहुँ कोऊ भय नाहीं ।।
सोवत बगिया माहिं बार-बनिता कोउ प्यारी ।
सकत न चंचल पवन तासु पट नेकु उघारी ।।

(३४)

नगर माहिं कँहु लसत ललित उद्यान सुहायो ।
जहँ बसन्त रितु रहत बारहू मास लोभायो ।।
नाचत कतहुँ मयूर कहूँ कल कोकिल गावत ।
त्रिबिध समीरन बहत त्रितापनि दूरि भगावत ।।

(३५)

सोइ बाटिका माहिं सम्भु-मूरति इक सोहति ।
गौरि चकित रहि जाति जबै वाकी दिसि जोहति ।।
ताको भाल-मयंक छटा यहि बिधि छिटकावत ।
कैसेहु काहू ठाम निसा - तम दुरन न पावत ।।

(३६)

जात कहूँ पिय - धाम बाम सुक्ला अभिसारी ।
भूषन जटित जराय जरे पहिने सित सारी ।।
मिली जोन्ह मैं बाल कहूँ नहिं परत लखाई ।
अम्बर-बिधु की करत जात यहि भाँति हँसाई ।।

(३७)

गमकत कतहुँ मृदंग बीन बाजत कहुँ रूरी ।
जलतरंग की तान रही काननि मैं पूरी ।।
"होरी ध्रुपद" अलापि कहूँ बर-गायक गावत ।
ताही कौ अनुहारि तमूरा मधुर बजावत ।।

(३८)

यहि बिधि बिपुल बिलास रहत नृप-सासन माहीं ।
सुख सौं बीतत बर्ष होत चिन्ता कछु नाहीं ।।
हिय के सब अभिलाष प्रजा मन मुदित पुरावत ।
नृप की दीरघ आयु काज हर-गौरि मनावत ।।

(३९)

नृप कौ आदर-पात्र सबै अपने कौ मानत ।
सिन्धु-भूप यहि भाँति प्रजा-सरितनि सनमानत ।।
गहे मध्य-गति अपर नृपत बल पाय दबायो ।
राजनीति अवलम्बि सबनि पालन मन लायो ।।

(४०)

उत नृप गुरु-पद बन्दि तजन गृह आयसु माँगी ।
चल्यो बनहि तप करन सकल भव-फन्दनि त्यागी ॥
पै करि अति अनुरोध जान दीन्ह्यो सुत नाहीं ।
पुर बाहर रचि पर्नसाल निवस्यो तेहि माहीं ॥

(४१)

हट्यो पुरानो भूप नवल नरनायक आयो ।
रवि-ससि-युत नभ-सरिस राज-कुल सो दरसायो ॥
धरे जती - नृप - रूप बान - अस्कन्द सयाने ।
भक्ति-मुक्ति-फल-युक्त धर्म - जुग - अंग लखाने ॥

(४२)

याही परिनत बैस माहिं निज चाप बिहाई ।
धारत बलकल बसन दैत्य - बंसज - नरराई ॥
त्यागि लोक-सम्बन्ध सकल इन्द्रिन गति बाँधत ।
कानन करत निबास मुक्ति हित सिव अवराधत ॥

(४३)

नय-पटु मंत्रिन मिल्यो भूप दृढ़वन निज राजैं ।
मिल्यो जतिन सो बान परम - पद पावन काजैं ॥
जन-रच्छन - हित लियो नवल नरपति सिंहासन ।
इतै ध्यान हित लियो बान भूपति दरभासन ॥

(४४)

जीते केतिक नृपनि भूप निज बलहिं बढ़ाई ।
प्रानादिक तन पवन समाधिहिं बान लगाई ॥
बैरि - बृन्द - अभिलाष नृपति निज तेजनि बारचो ।
इत भव-कर्म - कलाप बान ज्ञानानल जारचो ॥

(४५)

पाल्यो नृप कर्तव्य न फल जौं लगि दरसाये ।
तज्यो बान नहिँ जोग ब्रह्म दर्शन बिनु पाये ।।
कीन्ह्यो इन्द्रिय - दमन बान, इत नृप आरातिन ।
निज निज काजन लही सिद्धि दोहुन सब भाँतिन ।।

(४६)

इमि पुर बाहिर निवसि बान कछु काल बितायो ।
बहुरि उग्र तप करन सघन बन माहिं सिधायो ।।
सम्भु-सैल करि पार मानसर के ढिग जाई ।
लग्यो करन तप घोर भूप पंचाग्नि जराई ।।

(४७)

खड़ो एक पग रह्यो ब्योम दिसि हाथ उठाये ।
सिव सिव निज मुख कहत भानु दिसि दीठि लगाये ।।
यहि बिधि करि तप घोर दिवस बितये नर-त्राता ।
गयो सुखाय सरीर सहत हिम-आतप-बाता ।।

(४८)

सिमटचो ललित - ललाट बंक - बिधु कौ मदहारी ।
पैठे लोचन लोल डरत अरि जिनहिं निहारी ।।
मुरझचो मुख अरबिन्द रही नहिं नेकु लुनाई ।
सूखे कलित कपोल खीन सब गात लखाई ।।

(४९)

जा भुज सौं धनु खैंचि सम्भु-सुत को मद झारचो ।
सोभा जासु बिलोकि सुघर करि-कर हिय हारचो ।।
लागे भस्म-बिलेप भई सोऊ अति रूखी ।
अच्छमाल के सहित गई सर लौं वह सूखी ।।

(५०)

सूखि गयो नृप गात बिसाल,
रही ठठरी तन मैं अवसेखी ।
फोरि कै ब्रह्म कौ रन्ध्रहि प्रान,
मिल्यो सिव संकर मैं सबिसेखी ।
यौं तनु जोग की आगि मैं जारि,
गयो सिव-धाम बनौ हर-त्रेखी ।
त्यौहीं दवागिन-ज्वाल की मालनि,
कानन मैं बनचारिन देखी ॥

अष्टादश सर्ग

चौपाई

(१)

दोहा—इत अस्कन्द महीपमनि, राजनीति हिय लाय।
बितये केतिक बर्ष इमि, प्रजा पलि सुखपाय ॥

एक दिवस नृप के मन आई।
प्रजा-राज अवलोकहुँ जाई ॥
अमित मास बीते पुर माहीं।
धरती - कूत करी कछु नाहीं ॥
अरु नहिं पसुन निरीछन कीन्ह्यों।
गामनि पै कछु ध्यान न दीन्ह्यों ॥
अस गुनि नृप मंत्रिन बुलवायो।
निज बिचार तिन सबनि सुनायो ॥
सचिव मुदित मन सुनि नृप-बानी।
मनु कुसुमित भइ लता सुखानी ॥
तिन नृप - मत - अभिनन्दन कीन्ह्यों।
"जाइय अवसि भूप" कहि दीन्ह्यों ॥
राज - भार मंत्रिन कहँ दीन्ह्यो।
प्रमुदित भूप गवन तब कीन्ह्यो ॥
दोउ तियनि दासनि लै साथा।
अरु कछु सैन सज्यो नरनाथा ॥

(२)

दोहा—सेवक सैनिक साहसी, सम बय सुभट सुजान।
राजकर्मचारीनि लै, कियो भूप प्रस्थान ॥

प्रथम अग्रगामी दल जाई ।
सुखद सिबिर बहु रचे बनाई ॥
अरु दीन्ह्यो सब साज सँजोई ।
जाते कष्ट होइ नहिं कोई ॥
चरमुख सकल ग्राम के बासी ।
आवत सुन्यो नृपति सुखरासी ॥
भूप दरस हित अमित उछाहू ।
चले लेन सब लोचन - लाहू ॥
दधि, नवनीत, दूध, तरकारी ।
लाय सिबिर फल मूलनि धारी ॥
राखन काज मान तिन केरो ।
प्रजा - भेंट सेवक नहिं फेरो ॥
पै गुनि नृप - अदेस मन मांही ।
दीन्ह्यो बस्तु - मूल्य सब काहीं ॥
बिगत - दिवस नरनायक आये ।
स्वागत सब मिलि कीन्ह सुहाये ॥

(३)

दोहा—दिजन दियो आसिष मुदित, क्षत्रिन परसे पाँय ।
दई भेंट बैस्यन सुधर, सादर सीस नवाय ॥

पथ-स्रम नृप निसि सोय गँवाई ॥
प्रातहि जगे दैत्य - कुल - राई ॥
नित्त-क्रिया करि सिव-पद ध्याई ।
देखन ग्राम चले सुख पाई ॥
सचिव - सुभट - सेवक कछु साथा ।
रानिहि संग लीन्ह नरनाथा ॥
मुखिया चल्यो चरन सिर नाई ॥
गुरुकुल नृपहिं दिखायो जाई ॥

सुनि बटुमुख नरपति कौ आवन ।
सादर कुलपति चले लेवावन ।।
आसिष दै भीतर लै आये ।
जहाँ पढ़त बटु - बृन्द सोहाये ।।
पूछयो नृप कुलपति दिसि हेरी ।
है सब कुल आस्रमनि केरी ।।
मिलत निवार कुसा तुम काहीं ।
चरत ग्राम पसु तौ तिन नाहीं ।।

(४)

दोहा——कह गुरु दैत्य-महीप कर, जहँ लगि तपत प्रताप ।
कुसल सकल, तरसीन कौ सकत कौन दै ताप ।।

लै गुरु नृपहिं गयो तेहि ठामा ।
जहँ बटु-बृन्द पढ़त यजु-सामा ।।
मनहुँ देवगन सकल सोहाये ।
बिद्या पढ़न सम्भु - गृह आये ।।
बटु दिसि देखि सचित्र कछु भाख्यो ।
सस्वर साम सुनन अभिलाख्यो ।।
गुरु रुख लखि कछु बटु हरखाई ।
लागे पढ़न रिचा सुख पाई ।।
सुनत सँतोष नृपति मन मान्यौ ।
साधु साधु कहि गुरु सनमान्यौ ।।
अपर भवन गवने नर - राई ।
गुरु बैद्यक जहँ रह्यो पढ़ाई ।।
ज्यौतिष भवन बहोरि पधारे ।
रवि - मण्डल जनु अवनि उतारे ।।
मल्ल - गेह गवन्यो नर - पालक ।
जँह ब्यायाम करत सब बालक ।।

(५)

दोहा—गदा, परसु, असि, कुन्त, युध, तहाँ लख्यौ नरनाह ।
जल थम्यन देख्यो बहुरि, भरि हिय अमित उछाह ॥

लख्यौ पुस्तकालय बड़भारी ।
बाद - बिबाद सुन्यौ सुखकारी ॥
कन्या - गुरुकुल रानी देखी ।
भयो हिये संतोष बिसेखी ॥
तिन सब कहँ परितोषिक दैके ।
फिरयो भूप गुरु - आसिष लैके ॥
ग्राम-दसा इमि सकल निहारी ।
ओषधि - भवन लख्यौ दुखहारी ॥
बैद्य मनहुँ अस्विनीकुमारा ।
करत कठिन रोगनि - उपचारा ॥
सुभट स्वयम - सेवक - दल देख्यौ ।
संस्था कितिक अपर अवरेख्यो ॥
ग्राम - कोष पंचायत जाई ।
बहुरि कोठार लख्यौ नरराई ॥
बीज - बेसार केर जो लेखा ।
सब निज नैन महीपति देखा ॥

(६)

दोहा—खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नरनाह ।
कृषिकन कौ दुख-सुख सुन्यौ, मन मँह अमित उछाह ॥

गुनि मध्यान रानि रुख पाई ।
भूपति चले सिबिर हरखाई ॥
अरु ग्रामीन हुते सँग जेते ।
निज निज गृहनि गये मिलि ते ते ॥

सिबिर आय नृप भोजन कीन्ह्यो ।
अरु बिश्राम जथा-रुचि लीन्ह्यो ।।
कियौ सयन इमि दिवस बिताई ।
चौथे पहर उठ्यो नरराई ।।
नाव - बिहार हिये मँह ठयऊ ।
सरवर निकट भूप चलि गयऊ ।।
आई तहाँ सजी बहु तरनी ।
सोभा अमित जाय नहिं बरनी ।।
चढ़्यो भूप आनन्द बढ़ाई ।
लीन्हें साथ सुभट - समुदाई ।।
तहँ केवट हिय होड़ लगाये ।
लिये जात निज तरनि भगाये ।।

(७)

दोहा — गायक गौरी रागिनी गावत लेत अलाप ।
बजत बीन अरु परत पुनि बर मृदंग पै थाप ।।

तौ लगि धवल छटा छिटकाई ।
नभ - पथ देखि पर्‌यो निसिराई ।।
तब नृप ससि - दिसि लखि मुसकाई ।
कह्यो कबिन सन गिरा सुनाई ।।
रजनिनाथ पै छन्द बनावहु ।
निज निज उक्ति बिचित्र सुनावहु ।।
कह कबि "बिम्ब सान सम देखी ।
ता मधि कछुक अरुनता लेखी ।।
यहि बिष ज्वालमयी कर हेरी ।
ससि न कहत मति बिरहिन केरी ।।
निसि मँह रवि न परत कहुँ लेखी ।
कढ़त सिन्धु बड़वागि बिसेखी" ।।

कोउ कह "यह बिधु है न अतूल्यो ।
नभ-सुरसरि-सरोज बर फूल्यौ" ।।
कोउ कह हर जब मैन जरायौ ।
जौ लगि सब तनु जरन न पायौ ।।

(८)

दोहा—बिधि खैंच्यौ हर-भाल की ज्वाल-माल सौं काम ।
छार भयौ तन पै लसत, आनन अति अभिराम ।।"

छन्द प्रबन्ध सुनत कबि केरो ।
तिन तन नृपति मुदित मन हेरो ।।
बिनती सचिव कीन्ह कर जोरी ।
नाथ! भई अब देर न थोरी ।।
यातें सिबिर ओर मग लीजै ।
प्रजन जान गृह आयसु दीजै ।।
सचिव-गिरा सुनि हिय हरखाई ।
चल्यौ सिबिर दिसि सुभट-सहाई ।।
अन्तःपुर भूपति पगु धारे ।
इत सब प्रजनि सचिव लौटारे ।।
ह्वैहै प्रात अहेर सुहायो ।
नृप-निदेस तिन सबनि सुनायो ।।
ते सब मुदित गये निज धामा ।
कहत सुनत - नृप कीर्ति ललामा ।।
स्रम निवारि नृप भोजन कीन्ह्यौ ।
रानी हँसि तमोल मुख दीन्ह्यो ।।

(९)

दोहा—सुघर फेन-सी सेज पै, कीन्हो सैन महीप ।
सुनि चारन- बिरुदावली, जग्यो दैत्य-कुल-दीप ।।

प्रात - क्रिया बिधिवत निपटाई ।
समिटे सकल सुभट समुदाई ।।
करन जाल अरु स्वानन लीन्हे ।
गवने चर अहेर मन दीन्हे ।।
इत सेवक-गन सिबिर उखारी ।
नव पड़ाव-हित कीन तयारी ।।
सकट लादि चलि बहु पथ आये ।
हिमगिरि-शृंग देखि तिन पाये ।।
तहँ सुपास सब भाँति बिचारी ।
कीन पड़ाव रुचिर पद - चारी ।।
इत महीप लै सुभट - समाजा ।
प्रबिस्यौ बन अहेर के काजा ।।
कोऊ कुन्त कोऊ असि लीन्हें ।
कोउ सर जोपि चाप पै दीन्हे ।।
हय - खुर - रेनु उड़त यहि भाँती ।
दिन ही होन चहत मनु राती ।।

(१०)

दोहा—यहि बिधि नृप सुभटनि सहित, कानन पहुँचे जाय ।
दियो धनुष-टंकार सौं, सोवत सिंह जगाय ।।

ब्याधन दियो स्वानगन छोरी ।
चपला - सरिस चले घन फोरी ।।
हरिन - यूथ एक चरत लखान्यो ।
तेहि लखि भूप सरासन तान्यो ।।
पै कर बान न छूटन पायो ।
धाय कुरंगहि स्वान गिरायो ।
भजे अपर मृग भय - बस जेते ।
मार्‌यो भूप बन सन केते ।।

भाजत हरिन कहत इमि जाहीं ।
प्रिया भीति तुम कहँ कछु नाहीं ।।
तिय दृग सम तुव नैन निहारी ।
तुम कहँ भूप सकत नहिँ मारी ।।
सावक पै नहिं बान चलैहैं ।
नृप बिबेक बिसराय न देहैं ।।
भागत अपर कुरंग लखान्यो ।
तेहि करि लच्छ चाप नृप तान्यो ।।

(११)

दोहा—लखि सन्मुख वाके खड़ी, मृगी देह निज आँड़ि ।
सदय हृदय भूपालमनि, सायक सक्यौ न छाँड़ि ।।

तब लगि घोर सब्द एक भयऊ ।
नृप तेहि ओर दीठि निज दयऊ ।।
तहँ भल्लुक नाहरहिं प्रचारी ।
लरत धरत नहिं पाँव पछारी ।।
बारिदनाद पंच-मुख कीन्ह्यो ।
भल्लुक गरजि उतर तेहि दीन्ह्यो ।।
चढ़यो कोपि केहरि-सिर जाई ।
सटा उपारि दियो बगराई ।।
बिषम घाव कन्धन पर कीन्ह्यो ।
सोनित सकल चूसि पुनि लीन्ह्यो ।।
इत नाहर खर नखर प्रहारी ।
दियौ तासु इमि उदर बिदारी ।।
अन्तावली परी महि आई ।
आमिष तासु भख्यो सुख पाई ।।
दोऊ सिथिल परे महि माहीं ।
कोऊ स्वास लीन्ह पुनि नाहीं ।।

(१२)

दोहा—तौ लगि सिंहिनि कोप सों, कीन्हें लोचन लाल ।
करत घोर रव भूप दिसि, सर-सम चली उताल ॥

तेहि आवत लखि सचिव सुजाना ।
सर संधानि सरासन ताना ॥
बिचुक्यो बाजि कछू हटि जाई ।
या ते ता तन चोट न आई ॥
चाह्यो झपटि अस्व गर लीन्हा ।
बाजि घुमाय भूप निज दीन्हा ॥
ह्वै सकोप करबाल प्रहारा ।
कीन्ह काटि सिंहिन जुग फारा ॥
निदरि मीचु एक बिकट बराहा ।
तेहि खन कानन-सर अवगाहा ॥
घुरघुरात पुनि भूपति ओरा ।
चला बराह करत रव घोरा ॥
तकि तकि तीरन सुभट चलाये ।
पै नहिं सक्यो कोल बिचलाये ॥
लोचन अरुन कढ़त जनु ज्वाला ।
खड़े स्रवन धायो मनु काला ॥

(१३)

दोह—हन्यो कोपि नृप कुन्त सिर, निकरि गयो ओहि पार ।
छूटी पिचिकारी सरिस, अरुन रुधिर की धार ॥

लोटन अवनि लग्यो घुरराई ।
खैंचि कृपान लीन्ह नरराई ॥
हन्यो कोप करि घाव प्रचंडा ।
काटि बराह कीन्ह जुग खंडा ॥

करत घोर रव संग उठाये ।
तहँ बन-महिष काल बस आये ॥
निरखि निकट सैनिक सर मारा ।
ताहि गिराय गिरयो इषु पारा ॥
गैंडा एक प्रचारत आयो ।
जनु कज्जलगिरि चलत सुहायो ॥
तेहि लखि भूप चाप कर लीन्हो ।
या बिधि बान प्रहारन कीन्हो ॥
सरनि मारि ताको मुख भरेऊ ।
तदपि अमित बल भूमि न परेऊ ॥
सर पूरित बड़ बदन पसारी ।
सोह्यो काल - त्रोन अनुहारी ॥

(१४)

दोहा—ताहि सिथिल-बल देखि इमि, लीन्हो दृढ़ गुन बाँधि ।
मुदित ब्याधगन सिबिर दिसि, चले ताहि लै साधि ॥

तीजो पहर जानि तेहि काला ।
चलेउ सिबिर कहँ आपु नृपाला ॥
सखा सचिव अनुचर सँग लागे ।
चले बाजि चढ़ि भूपति आगे
कतहुँ सस्य स्यामल सु रसाला ।
रूख सूख बन कतहुँ कराला ॥
झरना झरत नाद करि भूरी ।
अरु धुनि घोर कंदरनि पूरी ॥
सरित - कूल तरु - जूह सोहाये ।
जहँ खग - बृन्द रहत छवि छाये ॥
तहँ बहु खुटकबढ़ैया आवत ।
बिटप - छाल चोंचनि खटकावत ॥

लहि आहट तहँ कीरन केरी ।
फारत छाल न लावत देरी ।।
कीट चंचु - मधि आपुहि जाहीं ।
खग-गन तिनहिं मुदित मन खाहीं ।।

(१५)

दोहा—गिरत सुमन बनगज जबहिं, घिसत कुम्भ तरु जाय ।
सरि पूजा हित कुसुम जनु, रहे बिटप बरसाय ।।

कहुँ कीचक तरु - पुंजनि माहीं ।
घोर उलूक - भीर घुघुआहीं ।
सो धुनि सुनि बायस भय पाई ।
इत उत उड़त न परत लखाई ।।
कहुँ बोलत बन - मोर सोहाये ।
जेहिं सुनि ब्याल दर्प बिसराये ।।
परम - जठर - चन्दन - तरु जाई ।
सहमे लपटि रहैं घबराई ।।
कानन सघन पार करि आये ।
बन सुरम्य पुनि मिले सुहाये ।।
नभचर - बृन्द मुदित मन गाई ।
रहे भूप - जस मनहुँ सुनाई ।।
सुमन - जाल तरु - जूह गिरावत ।
नृप-हित जनु पावड़े बिछावत ।।
सरसिज सरनि लसत अभिरामा ।
जोरि पानि जनु करत प्रनामा ।।

(१६)

दोहा—अरुन सुकोमल किसलयनि, पादप-पुञ्ज डुलाय ।
मानहुँ दैत्य - नरेस कँह, बन-दिसि रहे बुलाय ।।

इमि बन लखत चले नृप जाहीं ।
अधिक उछाह भरे मन माहीं ॥
उतै अमित - रव हयनि भगाई ।
अस्ताचलहिं चले दिन - राई ॥
तारक - बृन्द हँसे नभ आई ।
पै न सकैं तम - तोम हटाई ॥
गिरि पर इत उत लसत उजेरी ।
लखि मति भ्रमित भई नृप केरी ॥
कह चर नाथ! ओषधिन पाँती ।
करत प्रकास दिया सम राती ॥
तो लगि सबै सिबिर पगुधारी ।
धरचो अस्त्र अरु कवच उतारी ॥
सेवक दियो झारि पग धूरी ।
गहि पद कियो मार्ग - स्रम दूरी ॥
अन्तःपुर महीप पग दीन्ह्यो ।
आगे चलि रानी तेहि लीन्ह्यो ॥

(१७)

दोहा——भोजन नृपहिं करायकै, बहुरि खवायो पान ।
चरन चापि निंदिया लियौ, भई निसा अवसान ॥

प्रात - क्रिया विधिवत निपटाई ।
गिरि-छवि लखन चले नरराई ॥
चर गिरि स्रंग नृपहिं दिखराये ।
धरे सीस हिम - मुकुट सुहाये ॥
दिनकर - प्रथम - किरन अभिरामा ।
जेहिं कलधौत करत तेहि ठामा ॥
किन्नर - मिथुन बारि सन भागी ।
भूधर - स्रंग चढ़त अनुरागी ॥

जहँ केहरि बन - गजन गिराये ।
अरु तुषार मग चिन्ह दुराये ।।
गज - कुम्भज - मुक्तनि अनुसारी ।
तउ किरात मग लेत बिचारी ।।
दिनकर - करनि अमित भय पाई ।
गुहा माहिं तम रहत लुकाई ।।
गिरि - सम धीर बीर जगमेंहीं ।
अभय - दान आस्रित कहँ देहीं ।।

(१८)

दोहा——करि कम्पित सुर-द्रुमनि; लहि, गंगसलिल कन बात ।
मृग खोजत बन महँ थके, सेवत ताहि किरात ।।

हिम - गिरि - अंक सीत अधिकानी ।
भूपति राज चलन मन आनी ।।
तब लगि उत बसंत-रितु आई ।
दियो सकल नव साज सजाई ।।
राजा दोउ संग पुर आये ।
प्रजनि अमित आनन्द मनाये ।।
पुहुप पाँवड़ें तरुन बिछाईं ।
गुच्छनि बंदनिवार तनाईं ।।
लता प्रतान ललित चहुँ छाये ।
सुघर बसन्त कोकिलन गाये ।।
दै कचनार अनारनि लाली ।
बौरे अम्बनि दोन बहाली ।।
नूतन सुमन गुलाबनि पाये ।
अरु मधु लेन ललकि अलि आये ।।
ह्वै पलास अध - जरे अँगारा ।
लगे करन बिरहिन - हिय छारा ।।

(१९)

दोहा—जागन लग्यो मनोज अब, जोगिन के जियरान।
दिवस लग्यो अधिकान कछु, लगे पान पियरान॥

बिगत बसन्त तपन रितु आई।
लुवें चलीं, गई रसा सुखाई॥
बिरह बसन्त दुरन्त उदासा।
लुव-मिसि ग्रीषम लेतु उसासा॥
पवन निकुञ्ज माहिं ठहरानी।
छाँहहु छाँह पाइ बिरमानी॥
बिहरत एक संग बन माहीं।
पै त्रासत मृग कहँ हरि नाहीं॥
सर-तड़ाग-सरि सकल सुखानी।
रह्यो दृगनि मोतिन असि पानी॥
करन-जाल इमि भानु पसारयो।
मनहुँ सेष फन-ज्वाल निकारयो॥
कै बड़वागि कोप अति कीन्ह्यो।
तीजो नेन खोलि हर दीन्ह्यो॥
कौनेहु बिधि नहिं तृषा बुझानी।
मिलत न नभ-गंगा मैं पानी॥

(२०)

दोहा—यहि बिधि दुसह दुरन्त लखि नृप ग्रीषम को दाह।
जल-बिहार हित सरित-ढिग, आयो सहित उछाह॥

रुचिर सिबिर सरि-कूल सँवारे।
डारि जाल बहु नक्र निकारे॥
जहँ सरि-ढिग तरु कुसुमन छाये।
परिमल-बलित निकुञ्ज सुहाये॥

रानि संग तेहि ठाउँ अनूपा ।
पहुँचे आय दैत्य - कुल - भूपा ॥
तरनि चढ़ाथ तरुनि अनुरागी ।
नाव मलाहिन खेवन लागी ॥
सुनि नूपुर - धुनि राजमराला ।
चितवन चकित लगे तेहि काला ॥
कछुक दूरि सरि मधि इमि जाई ।
जल महँ फाँदि परचो नर-राई ॥
दोऊ निज दीरघ बाहु पसारी ।
अंकम भरि नृप तियनि उतारी ॥
नाभि - भवर - भ्रू - बीचि सुहाये ।
कुच - युग चक्र-बाक जनु आये ॥

(२१)

दोहा—कौटि लौं जल मँह भूप-तिय, करन लगीं जल-केलि ।
लखत मुदित भूपालमनि, आनंद अमित सकेलि ॥

जल बिच इमि तियगन छबि छाईं ।
कमला मनहु आपु चलि आईं ।
तिय-मुख नीर-मध्य इमि राजत ।
कुसुमनि कमल बेलि जिमि छाजत ॥
अंजलि भरि जल रानि उछारत ।
नहिं उपमा कछु बनत बिचारत ॥
जनु अम्बुज भरि कोसनि माहीं ।
मुक्त - गुच्छ जल डारत जाहीं ॥
सखि बर सलिल बदन पर डारी ।
मृग - मद - बिन्दु धोव सुकुमारी ॥
मनहुँ कमल जल-नात बिचारी ।
दीन्ह मयंक कलंक पखारी ॥

कहूँ अरुन अँगराग सोहायो ।
मृग - मद - चंदन संग धोवायो ।।
मिलि सरि-छटा लसत छबि देनी ।
मनहुँ आपु तहँ बहत त्रिबेनी ।

(२२)

दोहा——यहि बिधि करि जलकेलि नृप, सोहत रानिन साथ ।
जनु नभ-गंग-बिहार-रत, तियन संग सुरनाथ ।।

सरिते नृप तरनी पर आये ।
पकरि बाँह पुनि तियनि चढ़ाये ।।
कुन्दन बरनि पीत रँग सारी ।
ठाढ़ी केस निचोरत प्यारी ।।
दीन्ह असित - कर बिधुहिं दबाई ।
परे अमित मुकता चुचुआई ।।
गात अँगोछि पहिरि नव सारी ।
पुनि बर केस-कलाप सँवारी ।।
दियो भाल मृग-मद को टीको ।
जेहि लखि चन्द लगत अति फीको ।।
रानिन महँ भूपति यहि भाँती ।
जनु ससि घिरयो तरैयनि पाँती ।।
केवटिनी मन अति अनुरागीं ।
तट दिसि नाव चलावन लागीं ।।
पुलिन बिमल बालुका बिछाई ।
रत्न-रासि जनु चूरि मिलाई ।।

(२३)

दोहा——इमि भूपति निज तियनि सँग, करि बर-सलिल-बिहार ।
रथ चढ़ि निज मंदिर गयो, जात न लागी बार ।।

जथा समै रितु - तपन सिरानी ।
अरु आई बरषा सुखदानी ॥
गरजन लगे जलद अतिघोरा ।
लीन्हो नभहिं घेरि चहुँओरा ॥
इमि चहुँदिसि छायो अँधियारा ।
सूझ न आपन हाथ पसारा ॥
बिछुरत मिलत चकन अवरेखी ।
निसि-दिन भेद परत कछु लेखी ॥
निसि मँह ससि नहिं परत लखाई ।
पै नभ इन्द्र-चाप दरसाई ॥
मूसरधार परत छिति पानी ।
पलुही धरा बहुरि हरियानी ॥
कृसता मिटी कलोलिनि केरी ।
जिमि प्रोषितपतिका पिय हेरी ॥
स्याम घटा लखि चातक गाये ।
नटत मयूर पंख फैलाये ॥

(२४)

दोहा---हरित भूमि पै लसत इमि, इन्द्र बधू छबिधाम ।
मनहुँ मही पन्नामई, मानिक जटिल ललाम ॥

इक दिन स्याम घटा नभ छाई ।
रानी नृपसन कह्यो सुनाई ॥
एतो कहो हमारो कीजै ।
झूला आजु झूलि सँग लीजै ॥
नृप - कर गहि उद्यान पधारी ।
जहाँ सखी सब गईं अगारी ॥
रजत - खम्भ मखतूलनि डोरी ।
पटुली मनि - कंचन सौं जोरी ॥

तिय - सँग बैठि गये मनभावन ।
दै मचकी सखि लगी झुलावन ॥
झूलत पैंग बढ़न जब लागी ।
तिय पिय कंठ लगी भय पागी ।,
फहरति रुचिर सौसिनी सारी ।
हँसत भूप - भुज मूल निहारी ॥
कहत सखी दिसि भौंहं तरेरी ।
मचकी दै न बीर सुनु मेरी ॥

(२५)

दोहा—कोउ मृदंग कोऊ बीन बर, कोउ कर लिये सितार ।
नाचत बाम अनन्द सौं, गावत मेघ - मलार ॥

बर्षा बिगत सरद - रितु आई ।
पके धान चहुँ ओर सुहाई ॥
चहुँ दिसि लसत धवल छबि कासा ।
घन बिहीन भौ बिमल अकासा ॥
परत न इन्द्र - चाप कहुँ देखी ।
अरु छनदा न परै अवरेखी ॥
अब न पंख निज बक फटकारैं ।
नभ दिसि मुख न उठाय निहारैं ॥
आई तौ लगि मुदित दिवारी ।
दीप - पाँति बहुभाँति सँवारी ॥
खेल्यो नृप - सँग पंसासारी ।
तन-मन रानि गईं दोउ हारी ॥
पूनौ सरद निसा उजियारी ।
सखिन रास हित कीन्ह तयारी ॥
फटक - सिला नृप भवन सुहायो ।
फरस - बन्द पय - फेनु बनायो ॥

(२६)

दोहा—प्रमदा - जन - नखतावली, अरु रानी-मुख - चन्द ।
अम्बर - आरसि में लसत जनु प्रतिबिम्ब अमन्द ।।

रितु हेमन्त आय नियरानी ।
लगत तुषार - सरिस अब पानी ।।
सीत भीत पुहमी भय पागी ।
पाला गात दुरावन लागी ।।
तपत तपाकर कौ ससि जानी ।
बिरह - बिकल चकई मुरझानी ।।
अनल - तापि तन भे जनु जोगी ।
जोगी बनन चहत सब भोगी ।।
घाम परत चाँदनि सम लेखी ।
रजनी सरिस दिवस अवरेखी ।।
दिनहि कुमोदिनि बिकसन लागीं ।
लखत चकोर ससिहिं भय त्यागीं ।।
दिनमनि हू अब सीत सताये ।
रहे जाय घन - रासि सुहाय ।।
भामिनि मान मरूर बिसारी ।
बाहु मृनाल पिया - गर डारी ।।

(२७)

दोहा—सीतल-जल अरु सुरत-सुख, लहत अजाचित कन्त ।
सुखद सुहागिन - तियन कँह, केवल रितु हेमन्त ।।

लागत सिसिर सीत भइ गाढ़ी ।
लघु भौ दिवस जामिनी बाढ़ी ।।
तियनि साथ नृप मकर नहाये ।
दिये दान बिप्रन मन भाये ।।

इत पाँचै बसन्त की आई ।
सरसौं फूलि रही पियराई ॥
पके सालि अरु ऊख सुहाईं ।
बौर रसालनि परचो लखाई ॥
माती कोयलियाँ अनुरागीं ।
फाग सुरागनि गावन लागीं ॥
सिवब्रत मुदित महीपति कीन्ह्यो ।
उमा - महेस थापि तहँ दीह्यो ॥
फाग खेलि दोउ रानिन साथा ।
मलेउ गुलाल मुदित नरनाथा ॥
अरु निसि माहिं जरायौ होरी ।
भेंटउ प्रात सुजन उर जोरी ॥

(२८)

दोहा—यहि बिधि प्रमुदित महिप मनि, केतिक बरस बिताय ।
किये राज्य पाल्यो प्रजा, सिव-पद-पंकज ध्याय ॥

(२९)

उर ध्याय सिव-पद - कंज यहि बर ग्रंथ की रचना खरी ।
सुभ होलिका अलि चरन ग्रह रस इन्दु मैं पूरन करी ॥
जे आपु पढ़िहैं याहि अथवा रसिक जननि पढ़ाइहैं ।
ते निखिल नाटक काव्य चारु, पुरान को रस पाइहैं ॥

(३०)

महमूदाबादबासी सिव-पद-रत जो वैस्यबंसावतंस ।
श्री मातादीन साह प्रबलमति महादेवि कौ शुभ्रअंस ॥
अंतेवासी रह्यो जो दिजबर गुरु श्री नन्दनन्द प्रसंस ।
भाषा मैं हृदयालु प्रमुदित बिरच्यौ काव्य "श्रीदैत्यबंस"॥

समाप्तं चैतत् दैत्यवंशमहाकाव्यम्

॥ शुभं भूयात् ॥